RNI No. 7127/60

डाक पंजीयन संख्या - Jaipur City / 411 2020-22

संघशक्ति

मासिक समाचार पत्रिका

वर्ष : 59 अंक : 11 प्रकाशन तिथि : 25 अक्टूबर कुल पृष्ठ : 36 प्रेषण तिथि : 4 नवम्बर 2022

शुल्क एक प्रति : 15/- वार्षिक : 150/- रुपये पंचवर्षीय 700/- रुपये दस वर्षीय 1300/- रुपये

श्री क्षत्रिय युवक संघ के द्वितीय संघ प्रमुख
पूज्य श्री आयुवानसिंह जी हुडील

जन्म : 17-10-1920 निर्वाण : 7-1-1967

श्री क्षत्रिय युवक संघ के द्वितीय संघ प्रमुख
पूज्य श्री आयुवानसिंह जी की जयन्ती पर हार्दिक शुभकामना

पूज्य श्री आयुवानसिंह जी

विरेन्द्र सिंह तलावदा
Contractor
(M) 94143-96530

हम कदम यों ही आगे बढाते रहे, तो धरा आसमां छोटे हो जायेंगे।
जो बाँहें मिली वे मिली ही रही, तो नसीबों के साये भी मुस्करायेंगे।।

श्री जय अंबे स्वयं सेवक संघ

श्री जय अंबे स्वयं सेवक संघ
स्थापना :- २१/०४/१९९०

-: श्री जय अंबे स्वयं सेवक संघ के कार्य :-

- साइकल स्कीम ✦ 700 सभ्य की बचत स्कीम ✦ व्यसन मुक्ति
- कुरिवाज का त्याग ✦ अंध श्रद्धा को दूर करना ✦ प्राथमिक कक्षा के बालकों के लिए हर साल फ्री में नोटबुक और जरूरी सामग्री देना
- इनाम वितरण ✦ दशहरा महोत्सव ✦ महाराणा प्रताप जयंती महोत्सव
- गांव की प्राथमिक स्कूल में कंप्यूटर लेब निशुल्क बालकों के लिए

देवेंद्रसिंह, घनश्यामसिंह
अध्यक्ष

सिद्धराजसिंह, अनिरुद्धसिंह
उपाध्यक्ष

हशपालसिंह, जयदीपसिंह
उपाध्यक्ष

यशराजसिंह, तजवितसिंह
मंत्री

हिरेन्द्रसिंह जदुभा
संगठन मंत्री

मित्राजसिंह, नवलसिंह
संगठन मंत्री

महावीरसिंह, महेंद्रसिंह
छात्र पुरस्कार वितरण - समन्वयक

भगीरथसिंह, किशोरसिंह
छात्र पुरस्कार वितरण - समन्वयक

रामदेवसिंह नारुभा
महाराणा प्रताप वर्षगांठ - समन्वयक

शक्तिसिंह, राजेन्द्रसिंह
महाराणा प्रताप जयंती - सह संयोजक

सिद्धराजसिंह, जयेंद्र सिंह
दशहरा महोत्सव समन्वयक

युवराजसिंह, महेंद्रसिंह
दशहरा पर्व - सह संयोजक

संघशक्ति

4 नवम्बर, 2022

वर्ष : 58 अंक : 11

-: सम्पादक :-

लक्ष्मणसिंह बेण्यांकाबास

शुल्क – एक प्रति : 15/- रुपये, वार्षिक : 150/- रुपये, पंचवर्षीय : 700/- रुपये, दस वर्षीय : 1300/- रुपये

विषय – सूची

☞ समाचार संक्षेप	✍	04
☞ चलता रहे मेरा संघ	✍ श्री भगवान सिंह रोलसाहबसर	05
☞ पूज्य श्री तनसिंहजी (के सम्बन्ध में)	✍ चैनसिंह बैठवास	07
☞ निष्काम कर्म	✍ गिरधारी सिंह डोभाड़ा	09
☞ मर्यादा मुझसे रुष्ट न हो	✍ डिप्टी सिंह राजगढ़	12
☞ पृथ्वीराज चौहान	✍ श्री विरेन्द्र सिंह मांडण	13
☞ यदुवंशी करौली का इतिहास	✍ राव शिवराजपाल सिंह इनायती	15
☞ तनसिंह जी एक नहीं अनेक	✍ श्रीमती कमलेश रामदेरिया	17
☞ छोड़ो चिन्ता-दुश्चिन्ता को	✍ स्वामी श्री जगदात्मानन्द	20
☞ महान क्रान्तिकारी राव गोपालसिंह खरवा	✍ भँवरसिंह मांडासी	24
☞ विचार सरिता (पञ्चसप्तति लहरी)	✍ विचारक	27
☞ परमवीर मेजर शैतानसिंह	✍ ब्रिगेडियर मोहन लाल (से.नि.)	28
☞ दिव्य चिकित्सा-दैवी चिकित्सा	✍ स्वामी गोपाल आनन्द बाबा	30
☞ अपनी बात	✍	32

समाचार संक्षेप

शिविर :

श्री क्षत्रिय युवक संघ के प्रशिक्षण शिविर निर्बाध रूप से विभिन्न स्थानों पर सम्पन्न हो रहे हैं। सितम्बर माह में बालकों के कुल 40 प्राथमिक प्रशिक्षण शिविर सम्पन्न हुए। उनमें से 3 शिविर गुजरात में और एक शिविर महाराष्ट्र में तथा शेष राजस्थान में सम्पन्न हुए। गुजरात में अगस्त माह में अनेक शिविर हो चुके तो अगस्त माह में कर्नाटक, उत्तरप्रदेश में भी शिविर हो चुके हैं। सितम्बर माह में बालिकाओं के 6 शिविर सम्पन्न हुए जिनमें 2 शिविर गुजरात में हुए। बालिकाओं के शिविरों में संख्या खूब उमड़ रही है और कई जगह से शिविर के लिए आग्रह भी आते हैं परन्तु बालिका शिविर के लिए उपयुक्त स्थान होने पर ही स्वीकृति दी जाती है। शिविर शृंखला अक्टूबर माह में भी निरन्तर गतिमय है और अब तक अनेक शिविर हो चुके हैं तथा आगे होने वाले हैं।

अन्य कार्यक्रम :

संघप्रमुख श्री की उपस्थिति में फुलेरा से श्री राजपूत सभा जयपुर (देहात) का जिला स्तरीय प्रतिभा सम्मान समारोह 25 सितम्बर को सम्पन्न हुआ। संघ प्रमुखश्री ने क्षत्रिय युवक संघ का परिचय देते हुए बताया कि संघ समाज में क्षत्रियोचित संस्कारों के निर्माण पर मुख्य जोर देकर कार्य कर रहा है क्योंकि संस्कारित समाज ही वास्तविक विकास की राह पकड़ सकता है। समारोह को सांसद राज्यवर्धन सिंह, महन्त प्रताप पुरीजी, बालकनाथ महाराज व राजपूत सभा के अध्यक्ष रामसिंह चंदलाई ने भी सम्बोधित किया। राजपूत सभा की कार्यकारिणी के सदस्य तथा अन्य अनेक गणमान्य समाज बनधु भी उपस्थित थे।

दिल्ली में क्षत्रिय युवक संघ का पारिवारिक स्नेह-मिलन 26 सितम्बर को आयोजित हुआ। इस आयोजन में श्री क्षत्रिय युवक संघ का परिचय दिया गया जिसमें दिल्ली निवासी उत्तराखण्ड, हिमाचल प्रदेश, हरियाणा, उत्तरप्रदेश, बिहार, गुजरात व राजस्थान के समाज बन्धु सम्मिलित हुए थे।

सूरत व भादा शाखा में 18 सितम्बर को अधिकतम संख्या दिवस मनाया गया। सूरत के निकट बारडोली में स्नेह मिलन संघ व दक्षिण गुजरात राजपूत संकलन समिति की ओर से मनाया गया। संघ प्रमुखश्री के सान्निध्य का लाभ जोबनेर शाखा को भी 25 सितम्बर को मिला।

किसान सम्मेलन :

श्री प्रताप फाउण्डेशन की ओर से 18 सितम्बर को चित्तौड़गढ़ में जिले का किसान सम्मेलन आयोजित किया गया। इससे पूर्व 22 अगस्त को बीकानेर, 24 जुलाई को जैसलमेर तथा 24 जून को बाड़मेर में भी किसान सम्मेलन आयोजित हो चुके हैं। विभिन्न जातियों में परस्पर विवाद आज चारों ओर नजर आर हे हैं और राजनैतिक दल इन विवादों को हवा देकर लाभ उठाने में लगे हुए हैं। इससे गाँव, प्रदेश, देश का वातावरण विषैला होता जा रहा है। परस्पर संवाद को तिलांजलि देकर परस्पर विवाद में उलझे हुए हैं। ऐसे वातावरण को सुधारने के लिये ग्राम स्तर से प्रयास किया जाये तो कृषि ऐसा कार्य है जिससे गाँव के अधिकांश लोग किसी न किसी तरह जुड़े हुए हैं। इसलिए किसान सम्मेलन के आयोजन किये जा रहे हैं, जिनमें सभी जातियों का जुड़ाव है। साथ बैठकर परस्पर संवाद बनाएँ, सौहार्द पनपाएँ और किसान वर्ग की समस्याओं को भी सरकारों तक पहुँचाएँ। इसी उद्देश्य से ये सम्मेलन किए जा रहे हैं।

सम्मेलन में क्षेत्र से सम्बन्धित वर्तमान व पूर्व सांसद, विधायक, प्रधान, उप प्रधान, जिला प्रमुख आदि राजनेता भी आमंत्रित रहते हैं और सामाजिक संस्थाओं के प्रमुख भी आमंत्रित किये जाते हैं। बोलने का अवसर हर समाज के एक प्रतिनिधि को दिया जाता है। इस सम्मेलन में भी आमंत्रित सभी आए और हर समाज की तरफ से पूरा सहयोग मिला।

चलता रहे मेरा संघ

{उच्च प्रशिक्षण शिविर आलोक आश्रम बाड़मेर में 23 मई, 2022 को माननीय संरक्षक श्री भगवानसिंह जी रोलसाहबसर द्वारा प्रभात संदेश}

एक दिन हमने चर्चा की थी कि किसी भी कर्म के होने में पाँच कारण हैं,-अधिष्ठान, कर्त्ता, कारण, विविध प्रकार की चेष्टाएँ और दैव। अधिष्ठान को समझें तो अधिष्ठान का अर्थ है आधार। हमारा कार्य करने का आधार हमारा अधिष्ठान है, या कहें क्षेत्र है, यह समाज है। वह समाज जिसमें हम काम करना चाहते हैं, उस समाज की स्थिति कैसी है, यह हमको जान लेनी चाहिए। शिविर में आपको ऐसे लक्षण बताये जाएँगे जिनके कारण किसी समाज को मृत अथवा जीवित घोषित किया जा सकता है। हमारे समाज को उन लक्षणों के आधार पर तोला जाना आवश्यक है।

मृत चाहे व्यक्ति हो और चाहे कोई भी पशु हो, जो मृत है वह कुछ कर नहीं सकता। इसलिए उसका भार ढोने का कोई अर्थ नहीं है। लेकिन यदि जीवित है तो उस पर काम हो सकता है। यदि कोई समाज जीवित है तो उस समाज में काम करने का अर्थ बनता है। हम जो कार्य करना चाहते हैं, वह तभी सम्भव होगा जब हम अधिष्ठान के बारे में विचार कर लें। गीता के 13वें अध्याय में भगवान कृष्ण ने कहा है- यह शरीर ही क्षेत्र है-

इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते।
एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः।।

अर्थात्- हे कुन्ती पुत्र! यह शरीर 'क्षेत्र' इस नाम से कहा जाता है, और इसको जो जानता है, उसको 'क्षेत्रज्ञ' इस नाम से उनके तत्त्व को जानने वाले ज्ञानीजन कहते हैं।

जो इस बात को जानता है कि यह शरीर ही क्षेत्र है और शरीर को जानता है वह क्षेत्रज्ञ कहलाता है। यह हमारा शरीर क्षेत्र है तो सर्वप्रथम हमें क्षेत्र ही बनना है। क्षेत्र हम तब बन सकेंगे जब हमारा यह शरीर सदैव निर्मल बना रहेगा। भगवान हमारे उस शरीर के अन्दर बैठे हैं, इसकी अनुभूति होगी और सदैव बनी रहेगी। तब हम कह सकते हैं कि यह शरीर जो क्षेत्र है वह काम करने के योग्य है और जो हमने बीड़ा उठाया है, वह हमारे इस शरीर से होना सम्भव है।

इस शरीर अर्थात् क्षेत्र में क्या-क्या सम्मिलित है? यह जो दिखाई देने वाला शरीर है वह भी क्षेत्र में है और जो ना दिखाई देने वाला चतुष्टय अंतःकरण है- मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार, वह भी शरीर का ही हिस्सा है। ये सब भी हमारे मजबूत बनें। शरीर मजबूत बने उसके लिए हम अभ्यास करते हैं खेलों के द्वारा, भाग-दौड़ के द्वारा। यह साधना हो रही है। मन है वह जो इच्छाएँ उत्पन्न करता है। मन इन इच्छाओं के कारण भटकता रहता है। उस भटकते मन को रोकना, यह मन को मजबूत करना है, बलवान बनाना है। बुद्धि भी चंचल है, फिसल सकती है, स्वार्थ की ओर जा सकती है। यह न हो, इसके लिए यहाँ निस्वार्थ साधना की जाती है, निष्काम साधना की जाती है। यह अभ्यास चल रहा है हमारे अधिष्ठान को मजबूत करने के लिए चित्त, जिसको हम चेतना कहते हैं, वह यदि न हो तो हम स्वयं ही मरे हुए हैं। वह शक्ति जो हमको चेताती है, अन्तर से आवाज आती है, हम ना सुनें यह अलग बात है। उस अन्तर की आवाज को सुनना चित्त को मजबूत बनाना है। अहंकार को मजबूत नहीं बनाना है। लेकिन उस पर सोचना यह कि अहंकार को हमको महत्त्वाकांक्षा में बदलना है। महत्त्वाकांक्षा नहीं होगी तो हम कुछ कर नहीं पाएँगे। अहंकार को तिरोहित करते जाना है, यह भी क्षेत्र को मजबूत करना है। अहंकार रहित हमारा जीवन बन

जाए, इसका अभ्यास करवाया जाता है और तब हम अनुभव करते हैं हमार क्षेत्र, सारा शरीर कार्य करने योग्य है।

हमारे शरीर पर विचार कर लेने के बाद दूसरा विचार का क्षेत्र है हमार समाज। हमारे समाज में जहाँ हम काम करना चाहते हैं, उस समाज की हालत, उसकी दशा और दिशा क्या है? उस पर विचार करना आवश्यक है। इस विषय की समुचित व्याख्या यहाँ शिविर में की जाती है। यह व्याख्या इसलिए की जाती है कि हम भली प्रकार पहचान लें, समझ लें कि जिस समाज में हम काम कर रहे हैं, यह काम तो हमारा मानवीय दृष्टिकोण से है, संसार के कल्याण के लिए है लेकिन यह समाज उसके लिए आधार बनता है, आधार ही क्षेत्र कहलाता है, वही अधिष्ठान कहलाता है।

हम भगवान से प्रार्थना करें कि हमारा अधिष्ठान मजबूत हो, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार अपनी उचित भूमिका में लगे हुए हों और शरीर का सदुपयोग हो। जिस समाज में हम काम कर रहे हैं, उसके बारे में हम सुनते आ रहे हैं, बहुत बार लोग कहते हैं कि क्यों प्रयास कर रहे हो, यह समाज तो मर गया है, कुछ लोग हमारे काम के बारे में कहते हैं कि हम समाज की सेवा कर रहे हैं। दोनों ही बातों में श्री क्षत्रिय युवक संघ का विचार इससे भिन्न है। समाज अगर मर गया होता तो संघ कार्य में कोई जुड़ता ही नहीं, समाज में जीवन है जो हमें बरबस इस कार्य में लगाता है। हम समाज की सेवा कर रहे हैं, हम ऐसा भी नहीं कहते। हम तो समाज के प्रति हमारे दायित्व का निर्वहन करते हैं। कुछ लोग ऐसा भी कहते हैं कि हम समाज का उत्थान कर रहे हैं। हमारा ऐसा विचार नहीं है। पू. तनसिंहजी ने समाज को माँ का रूप दिया। माँ का उत्थान नहीं किया जाता, उसके प्रति अपने दायित्व का निर्वहन किया जाता है और उस दायित्व निर्वहन को लोग सेवा कहते हैं। माँ की तो बन्दगी की जाती है। परमेश्वर से प्रार्थना है कि हमारा समाज के रूप में, शरीर के रूप में, शिविर के रूप में हमारा अधिष्ठान मजबूत हो। आज के मंगल प्रभात में श्री क्षत्रिय युवक संघ की ओर से यही संदेश है। ●

चेतना के शब्द

– ईश्वर सिंह ढीमा

मैं जिन्दगी भर खेलता रहा शब्दों से
शब्दों के नए अर्थ और मूल्य
गढ़ता रहा
तरह-तरह के शब्द
इकट्ठे करता रहा
जैसे कोई बनिया अन्टी भरता है
आने वाली नस्लें
कोसेंगी मुझे मैंने नहीं बनाए महल
नहीं भरे कोठार
नहीं लिए धरती के बड़े बड़े टुकड़े
जैसा कि सब करते हैं
अपनी नस्लों के लिए
मैं सोचता रहा
मेरे शब्द
फूंकेंगे मुर्दों में प्राण
मुर्दे लड़ेंगे बड़ी-बड़ी जंगें
और खड़े करेंगे अपने-अपने साम्राज्य
मेरे शब्द सिक्कों की तरह जड़ नहीं हैं
चेतना की पूंजी से लबालब हैं। ●

गतांक से आगे

पूज्य श्री तनसिंहजी (के सम्बन्ध में)

''जो कुछ देखा, समझा व अनुभव किया''

– चैनसिंह बैठवास

आज की इस निकृष्ट व गंदी राजनीति ने समाज व राष्ट्र में ही क्या, बल्कि व्यक्ति-व्यक्ति के बीच में साम्प्रदायिकता का जहर घोल रखा है। इस जहर से न कोई शहर बचा है और न कोई गाँव। आज जाति के नाम पर, पार्टी के नाम पर, क्षेत्र व भाषा के नाम पर लोगों को बाँट-बाँट दिया है। परिणामस्वरूप व्यक्ति, व्यक्ति का शत्रु बन बैठा है। व्यक्ति के व्यक्तित्व की पहचान उसके सम्प्रदाय से होने लगी है। आज व्यक्ति के गुण-अवगुण गौण हो गये हैं। आज पार्टिगत बंटवारा अपने चरम पर है। एक पार्टी के लोग दूसरी पार्टी के लोगों के साथ में ऐसा व्यवहार कर रहे हैं जैसे वे एक दूसरे के दुश्मन हैं। सभी एक दूसरे को मिटाने व नीचा दिखाने पर तुले हुए हैं। हर कोई अपने आपको अन्य से श्रेष्ठ सिद्ध करने में लगा हुआ है और सामने वाले को नेष्ट सिद्ध करने में जी-जान से जुटा है। एक क्षत्रिय ही ऐसा है जो इस निकृष्ट राजनीति से दूर, बिल्कुल अछूता है। उसके जीवन में न तो जातिवाद है, न साम्प्रदायिकता है, न क्षेत्रवाद है, न धर्म और भाषा के आधार पर कोई भेदभाव है। उनका जीवन निष्कलंक व निष्कपट है। जो अपने लिए जीता है-वह जातिवाद, क्षेत्रवाद की बात करता है, धर्म और भाषा के आधार पर भेदभाव करता है। क्षत्रिय कभी अपने लिए नहीं जीता। वह तो अमृत होकर जीवित रहने वाले समाज के लिए जीता है, यही नहीं, वह तो प्राणीमात्र के कल्याण के लिये जीता है।

जो विषरूपी प्रवृति का विनाश करता है और अमृतरूपी प्रवृति की रक्षा करता है, वही क्षत्रिय है। क्षत्रिय किसी जाति, धर्म, क्षेत्र, भाषा व देश-विशेष से बन्धा हुआ नहीं होता, इन सबसे परे रहकर वह जीवन भर प्राणी मात्र के कल्याण के लिए कर्मरत रहता है। उनका किसी के प्रति भेदभाव नहीं रहता।

पूज्य श्री तनसिंहजी एक क्षत्रिय थे। वे क्षत्रिय के गुणों से परिपूर्ण व पूर्ण सत्वस्वरूप थे। वे सतोगुण की पराकाष्ठा थे। पूज्य श्री तनसिंहजी के जीवन से सम्बन्धित एक घटना का यहाँ वर्णन किया जा रहा है, जो हमें एक क्षत्रिय की भाँति जीवन जीने के लिए यहाँ प्रेरित करती है।

पूज्य श्री तनसिंहजी जब सांसद थे, उस समय की घटना है। संसद की अंतरंग समितियों के चुनाव हो रहे थे। मुस्लिम लीग के एक सदस्य एक समिति के लिए प्रत्याशी थे। उन्होंने अपने लिए समर्थन जुटाने के लिए अन्य सांसदों से सम्पर्क करना प्रारम्भ किया। वे पूज्य श्रीतनसिंहजी के पास आए एवं पूछा, आप किस पार्टी से हो? पूज्य श्री ने बताया-''राम राज्य परिषद से'', तो उन सांसद के मुख से निकल पड़ा-''तब क्या कहना है?'' इतना कहकर वे लौटने लगे, तो पूज्य श्री तनसिंहजी ने पुकारा-''फरमाइए क्या बात है?'' तो वे बोले-एक मत (वोट) चाहिए। पूज्य श्री तनसिंहजी का जवाब था कि मिल जाएगा, इसमें असमंजस की क्या बात है? उन सांसद महोदय ने आश्चर्य मिश्रित वचन कहते हुए प्रश्न पूछा, ''आप राम राज्य वाले मुस्लिम लीग वाले को मत देंगे?'' पूज्य श्री बोले-''मेरी पार्टी की दृष्टि में दीनदार मुसलमान, बेदीन एवं बेईमान हिन्दू से कहीं ज्यादा अच्छा है।'' वे सांसद पूज्य श्री का यह जवाब सुनकर अवाक रह गए। वे एक कर्मठ क्षत्रिय की स्पष्ट विचारधारा एवं दृढ़ मानसिकता की स्थिति से कृतकृत्य हो रहे थे। आज नफरत की ओछी राजनीति करने वालों को पूज्य श्री का यह जवाब है।

आज जाति के नाम पर, पार्टी के नाम पर, क्षेत्रवाद के नाम पर, धर्म व भाषा के नाम पर लोगों को बाँटने वालों और साम्प्रदायिकता का जहर फैलाने वालों के लिए पूज्य श्री की यह सीख है, यह आदर्श दृष्टान्त है। पूज्य श्री का हमें यह संदेश है कि किसी व्यक्ति का आकलन उसकी पार्टी, सम्प्रदाय, भाषा, जाति, धर्म, पक्ष-विपक्ष आदि से करने की अपेक्षा उसके गुण-अवगुण से करें।

आज हर कोई पार्टी अपनी विरोधी पार्टी को दुश्मन मानती है और उनके विरुद्ध दुष्प्रचार कर उन्हें आम लोगों की नजरों में गिराने व हर तरह से उनकी बुरी गत करने में लगी रहती है। जब एक पार्टी अपनी विरोधी पार्टी को दुश्मन मानती है, तो चुनाव में खड़ा होने वाला प्रत्याशी भी अपने विरुद्ध खड़े प्रत्याशी को भी दुश्मनी की नजर से ही देखा करता है। हर प्रत्याशी अपने विरोधी प्रत्याशी की साख जनता में गिराने, अपने को उनसे श्रेष्ठ सिद्ध करने और उन्हें नेष्ट सिद्ध करने में लगा रहता है तथा राजनीति में उन्हें पंगु बनाने का उनका हर प्रयास रहता है। पूज्य श्री तनसिंहजी दो बार विधायक रहे, दो बार सांसद रहे, पर उन्होंने अपने विरुद्ध खड़े प्रत्याशी का कभी बुरा नहीं सोचा, कभी भी उनका अनिष्ट नहीं चाहा, सदैव उनके हित में ही सोचा। इसका दृष्टान्त 1977 के आम चुनावों में देखने को मिला जिसका वर्णन यहाँ किया जा रहा है।

1977 के आम चुनाव में बाड़मेर-जैसलमेर लोकसभा क्षेत्र से पूज्य श्री तनसिंहजी के सामने खेतसिंह जी चौरड़िया ने कांग्रेस के उम्मीदवार के रूप में चुनाव लड़ा। चुनाव परिणाम में खेतसिंह जी 88,000 वोटों से पराजित हो गए। देश में लगे आपातकाल के दौरान की गई ज्यादतियों के विरोध में वोट पड़े और लगभग पूरे देश में कांग्रेस की हार हुई। हार के कारण कांग्रेस में श्रीमती इंदिरा गाँधी का विरोध होने लगा और अपनी हार से गुस्साये अनेक कांग्रेसी नेता श्रीमती इंदिरा गाँधी के विरोध में कांग्रेस पार्टी छोड़ने लगे। पूज्य श्री तनसिंहजी को समाचार मिले कि खेतसिंह जी भी अपनी हार से उपजी निराशा के कारण कांग्रेस पार्टी छोड़ने जा रहे हैं। पूज्य श्री ने खेतसिंह जी को संदेश भिजवाया कि आपको पार्टी नहीं छोड़नी चाहिए। चुनावों में हार-जीत चलती रहती है। इस बार की हार अगली बार जीत में बदल भी सकती है लेकिन पार्टी छोड़ना आत्मघाती कदम होगा। वर्षों की मेहनत के बाद पार्टी में आपका स्थान बना है, उसके लिए एवं उसे और मजबूत करने के लिए आवश्यक है कि आप इसी पार्टी में रहें। यह थी पूज्य श्री की अपने विरोधी के प्रति सद्भावना एवं राजनीतिक पार्टियों के प्रति दृष्टिकोण। हर राजनेता अपने विरोधी का पराभव चाहते हैं और पूज्य श्री अपने विरोधी के हितैषी बनकर सामने आये।

पूज्य श्री तनसिंहजी ने अपना पहला चुनाव राम राज्य परिषद से लड़ा। वे राजनीतिक पार्टी के रूप में राम राज्य परिषद के सदस्य बने और फिर किसी अन्य पार्टी के सक्रिय सदस्य नहीं बने। राम राज्य परिषद का अस्तित्व न बचने पर अन्य दल के साथ चुनाव तो लड़े पर पूर्णकालिक सदस्य किसी भी अन्य दल के नहीं बने। यही सलाह उन्होंने अपने राजनीतिक विरोधी खेतसिंह जी को दी। पूज्य श्री का मानना था कि हमारा पहला दलगत चुनाव सोच-विचार कर किया जाना चाहिए और एक बार चुनने के बाद उसे मजबूती से पकड़े रहना चाहिए।

क्षत्रियोचित गुणों से परिपूर्ण व्यक्ति महापुरुष ही होता है। वह किसी का बुरा सोच ही नहीं सकता। पूज्य श्री का उद्भव ही दूसरों के त्राण व रक्षण के लिए हुआ। उनका जीवन सर्वजन हिताय व सर्वजन सुखाय ही था। उन्होंने अपने लिए नहीं बल्कि दूसरों के हितार्थ जीवन जीया। **(क्रमशः)**

निष्काम कर्म

– गिरधारीसिंह डोभाड़ा

कर्म– क्रिया या प्रवृति को कर्म कहते हैं। हमारे धर्म-शास्त्रों में सामान्यत: तीन कर्म बताये गये हैं। नित्य कर्म, नैमित्य कर्म और काम्य कर्म। नित्य कर्म वे हैं जो हम रोजाना करते हैं। इन कर्मों को हमें हर रोज करना पड़ता है। दातुन करना, स्नान करना, शौच जाना, भोजन करना, आराम करना आदि नित्य कर्म की श्रेणी में आते हैं। नैमित्य कर्म वे हैं जो अन्य के लिए किए जाते हैं। किसी अन्य को निमित्त बनाकर किए जाने वाले कर्म नैमित्य कर्म हैं। जैसे समाज सेवा करना, देश की रक्षा के लिए युद्ध करना, ब्राह्मण द्वारा किसी अन्य के लिए पाठ करना इत्यादि। काम्य कर्म वह है जो किसी कामना से किया जाता है। जिस कर्म के पीछे फल प्राप्ति की इच्छा रही हो। जैसे व्रत, हवन करने से, दान देने से हमें पुण्य मिलेगा, भजन करने से भगवान मिलेंगे, पढाई करने से ज्ञान मिलेगा जिससे अच्छी नौकरी मिलेगी इत्यादि।

नित्य कर्म करने और न करने से उसका जो परिणाम आता है वह उसके कर्ता को या न करने वाले को तुरन्त ही भुगतना पड़ता है। जैसे हम शरीर की शुद्धि नहीं रखेंगे तो बीमार पड़ सकते हैं। नैमित्य कर्म का फल जिसके लिये कर्म किया गया हो, उसको भुगतना पड़ेगा। जैसे देश की रक्षा के लिए युद्ध करते हैं और विजयी होते हैं तो देश स्वतंत्र रहेगा और पराजित हुए तो देश और प्रजा विजेता के गुलाम हो जाएँगे। काम्यकर्म वह है जिसका फल उसके कर्ता को ही भुगतना पड़ता है। अच्छे कर्मों के अच्छे और बुरे कर्मों के बुरे फल ही भुगतने पड़ेंगे। वह फल चाहे इस जन्म में ही मिल जाए या अगले जन्म में मिले, लेकिन काम्य कर्मों के फल भुगतने ही पड़ते हैं। इन कर्मों को करना या न करना व्यक्ति के स्वयं पर निर्भर है।

हमारे धर्म-शास्त्रों में हमारे लिए नियत कर्म भी बहाया गया है। नियत कर्म हमें जन्म देने वाले हमारे नियंता परमेश्वर ने हमारे लिए निश्चित करके ही हमें किसी कुल में जन्म दिया है। ईश्वर ने जो हमारे लिए कर्म निश्चित किये हैं, उन कर्मों को हमें करना है। नियत कर्म का क्या फल मिलेगा वह हमारे वश में नहीं है। हमारे लिए जो नियत कर्म है उसे हम जिस भाव या भावना से करते हैं, उस पर ही फल निर्भर करता है।

श्रीमद्‌भागवत गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने निष्काम कर्म का उल्लेख किया है। गीता में वर्णित निष्काम की चर्चा करना या समझना मेरी क्षमता के परे की बात है, फिर भी उसका व्यवहारिक रूप जो मैं समझ पाया हूँ क्षमा प्रार्थना के साथ उसकी चर्चा करने की धृष्टता कर रहा हूँ। पाठक मेरे भाव समझने का प्रयास करें और मुझे क्षमा करें।

सामान्यत: काम को यौन भाव ही समझा जाता है, लेकिन यह सही नहीं है। काम का अर्थ है कामना या इच्छा। कोई व्यक्ति जब बिना बुलाये हमारे पास आता है तो हम उसे पूछते हैं कि आप किस काम के लिए आये हैं? अर्थात् आप किस इच्छा से आये हैं? यहाँ काम का अर्थ है इच्छा। निष्काम का अर्थ होगा– कामना रहित। कर्म कोई भी हो, बिना फल के तो होता नहीं। जैसा कर्म, वैसा ही फल होगा। लेकिन फल कैसा मिलेगा यह कर्ता के वश में तो है नहीं। फिर फल ऐसा ही हो जैसा हम चाहते हैं, यह कामना क्यों की जाये। इस कामना का त्याग ही कर्म को निष्काम बनाता है। गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने कर्म फल का त्याग करने वाले को योगी और सन्यासी कहा है–**अनाश्रित: कर्मफलं कार्यं कर्म करोति य:।**

अ.6-1 कर्म फल का त्याग यानी निष्काम कर्म। हमारे लिए नियत कर्म है, जो हमारे श्रेय के लिए परमेश्वर ने नियत किया है, उसे करना हमारा कर्तव्य है। उसका फल क्या मिलेगा, जैसा मिलेगा उसकी चिन्ता हमें नहीं करनी है क्योंकि हमारे नियंता ने यह कर्म हमारे लिए नियत किए हैं। योग की प्राप्ति के लिए योगरूढ होने की इच्छा वाले के लिये निष्काम कर्म को हेतु कहा गया है। इसमें मनुष्य को अपने समस्त संस्कारों का त्याग करना पड़ता है। जो व्यक्ति अपनी इन्द्रियों के भोग में आसक्ति नहीं रखता है, या अपने कर्मों में आसक्त नहीं होता है, वह सब संकल्पों को त्याग कर योगरूढ होता है। (गीता अ. 6-4)। जो व्यक्ति अपने मन और इन्द्रियों सहित अपने शरीर को वश में नहीं रख सकता वह स्वयं ही अपना शत्रु और जो व्यक्ति अपने मन सहित इन्द्रियों पर काबू पा लेता है, वह स्वयं ही अपना मित्र है -

बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जित:।
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत्।।

लेकिन मन और इन्द्रियों पर काबू पाना इतना आसान नहीं है। निरन्तर अभ्यास से ही मन व इन्द्रियों को वश में किया जा सकता है। मन और इन्द्रियों को वश में करने, सर्व संकल्पों का त्याग करने, निज कामनाओं का त्याग करने का अभ्यास कैसे और कहाँ किया जा सकता है? उत्तर है 'श्री क्षत्रिय युवक संघ'। जो सिखाता है-'निज को न बनाया तो जग रंच नहीं बनता'। श्री क्षत्रिय युवक संघ व्यक्ति की कामनाओं को जानकर निष्काम कर्म का अभ्यास करवाता है। श्री क्षत्रिय युवक संघ अन्य की चिन्ता छोड़ कर व्यक्ति को स्वयं को सद्संस्कारी बनाने की शिक्षा देता है, क्षत्रियोचित संस्कारों का अभ्यास करवाता है। श्री क्षत्रिय युवक संघ सद्गुणों का अभ्यास कैसे करवाता है? संघ चर्चाओं और अपने बौद्धिकों द्वारा पहले उन सद्गुणों का ज्ञान करवाता है, फिर खेलों और अन्य परिश्रम जन्य कार्यों द्वारा उन सद्गुणों का अभ्यास करवाता है। गीता कहती है-

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भु मा ते सङ्गोस्त्वकर्मणि।।

कर्म करना हमारा कर्तव्य है, कर्म करना हमारा अधिकार है। संघ की किसी प्रक्रिया को करना, उसके आदेश का पालन करना हमारा कर्तव्य बनता है। संघ की शाखाओं और शिविरों में जैसा कहा जाए, वैसा हम करते हैं। खेलों को ही लें, उदाहरण के लिये एक खेल 'गुरु चेला' को लें। दो दल हैं, दोनों दल अपना एक-एक गुरु तय कर बैठाते हैं। दलों के बीच संघर्ष होता है और अपने विरोधी दल के गुरु को उठाकर लाने और अपने गुरु का चेला बनाने के लिए संघर्ष करते हैं। कड़ा संघर्ष होता है। जो दल जीत जाता है वह 'क्षात्रधर्म की जय' बोलता है। खेल समाप्त हुआ। विजयी दल को न कोई शाबासी मिलती है और न कोई पुरस्कार। वैसे ही हारे हुए दल को न ग्लानि होती है, न उन्हें कोसा जाता है। क्यों? क्योंकि खेल खेलना कर्तव्य था, पराजित होंगे या विजयी होंगे, उस पर कोई अधिकार नहीं था। पूरे मनोयोग से, निष्काम भाव से खेल खेलना ही कर्तव्य था। हार या जीत तो किसी एक दल की होनी ही थी। जीत में गर्वित या अहंकारी न होना और हार में दुखी या शर्मिन्दा न होना, यही तो निष्काम भाव का संस्कार है। हार और जीत में, दोनों दलों के स्वयंसेवक खिलाड़ियों में खेल खेलने के आनन्द का समान भाव रहता है। यही गीता के उपरोक्त श्लोक का संस्कार है।

कई वर्षों से हम शिविरों में जाते हैं। हमने बहुत सारे शिविर कर लिए हैं। तब भी हम उस कामना को लेकर नहीं जाते कि मुझे घट प्रमुख बनाया जायेगा या पथक शिक्षक बनाया जायेगा। हमें तो शिविर में जाना है और शिविर संचालक या संघप्रमुख जो कार्य करवाना चाहें उसे पूरे मनोयोग से, पूरे पवित्र भाव से करना है। यही निष्काम कर्म का अभ्यास है।

श्री क्षत्रिय युवक संघ के कार्यक्रमों से हमारे अन्दर स्थित प्रज्ञ होने के संस्कारों का निरूपण किया जाता है। शिविर में हमारे घट का स्थान किसी पेड़ की छाया में हो या खुले आकाश के नीचे धूप में हो, मिट्टी वाली भूमि पर हो या पक्की फर्श पर हो, हम तो दोनों ही जगह आनन्द से रहते हैं पूरे हर्ष-उल्लास के साथ रहते हैं। धूप में बारी आने पर भी हमारी मन:स्थिति वैसी ही रहती है जैसी छाया में बारी आने पर। हम हमारे घट प्रमुख, संचालन प्रमुख या संघ प्रमुख किसी से भी शिकायत नहीं रखते कि हमें धूप में रखा गया और किसी को छाया में। अमुक स्वयंसेवक को पथक-शिक्षक का दायित्व मिला, अमुक को चर्चा लेने का दायित्व मिला और हमें रसोई के बर्तन साफ करने का दायित्व दिया है, यह विचार ही हमारे अन्दर नहीं आता। हर स्वयंसेवक में यह संस्कार डालने का अभ्यास चलता रहता है कि न कोई काम बड़ा है और न कोई काम छोटा है। हर एक स्वयंसेवक चाहे वह आयु में छोटा हो या बड़ा, उसे जो-जो कार्य दिया जाता है उसे वह पूर्ण पवित्र भाव से करता है। यदि किसी व्यक्ति के मन में ऐसा पवित्र भाव न हो तो वह स्वयं ही संघ से किनारा कर जाता है और इस संस्कार के अभ्यास से वंचित ही रहता है।

नि:संदेह मन के भावों को पवित्रता में ढालना या निष्कामना में ढालना बहुत कठिन होता है, क्योंकि मन बड़ा चंचल होता है, उसे एक भाव में बाँधे रखना बड़ा मुश्किल का काम है। फिर भी छोटे-छोटे कामों के अभ्यास से मन को वश में किया जा सकता है- यही तो गीता कहती है-

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येणच गृह्यते।।

पू. तनसिंहजी ने भी सहगीत में कहा है-**'समझ में न आए तो यही बात जानो, अभी कई रातें जगानी है बाकी।'** अर्थात् अभ्यास के माध्यम से ही हम संस्कारित हो पाएँगे। अत: अभ्यास चालू रखें, निरन्तरता बनाए रखें।

जो स्वयंसेवक अपने से आगे बढने वालों से द्वेष नहीं करता, कोई चीज न मिलने पर किसी प्रकार की कामना नहीं रखता, मुझे किस प्रकार का दायित्व मिले, ऐसे कोई भाव नहीं रखता, वह श्री क्षत्रिय युवक संघ को समझने की क्षमता रखता है। ऐसा स्वयंसेवक संघ का प्रिय पात्र है। वैसे तो कोई संघ को न समझे, कोई संघ का विरोध करे, कोई संघ की निन्दा करे, कोई किनारे खड़ा देखता रहे या संघ में आकर भी समझने की क्षमता अर्जित न करे वे सब भी संघ को अप्रिय नहीं लगते लेकिन जो क्षमता के अनुसार संघ को समझने का प्रयास करता है, जो निष्काम भाव से कार्य करता है, वह संघ को अधिक प्रिय है।

श्री क्षत्रिय युवक संघ हमारे अन्दर संस्कार डालता है कि शत्रु हो या मित्र, सबके प्रति समान भाव रखना है। मान या अपमान में समरसता है। सर्दी-गर्मी, सुख-दु:ख आदि द्वन्द्वों में सम रहना है। कहीं आसक्ति का भाव नहीं रखना है। आलोचना-प्रशंसा को समान रूप से लेना है। सद्मार्ग पर चलते हुए शरीर व परिवार का निर्वाह हो, उसी में संतुष्ट रहना है। रहने के स्थान के प्रति आसक्ति न रखें। यही गीता (अ. 12-18,19) कहती है। ऐसा व्यक्ति निष्कामता का ही पथिक है।

बिल्कुल ही निष्कामी होना सम्भव नहीं है। ऋषि, तपस्वी, त्यागी भी कामना से ही तप-त्याग करते हैं। उनकी कामना कोई भौतिक सुख-सुविधा की नहीं होती, उनकी कामना ईश्वर प्राप्ति की, मोक्ष प्राप्ति की होती है। श्री क्षत्रिय युवक संघ हमारे अन्दर यह भाव डालना चाहता है कि हम क्षत्रियोचित जीवन जीकर क्षत्रिय के नियत कर्म क्षात्रधर्म का पालन करें। ऐसा जीवन जीने का अभ्यास हमारे नियत कर्म, हमारे दायित्व को निभाने के लिए है। यह हमारा दायित्व है, कर्तव्य है, इसीलिए यह करना है। यही संघ का निष्काम कर्म है।

मर्यादा मुझसे रुष्ट ना हो

– डिप्टी सिंह राजगढ़

मर्यादा तू मेरे कुल की रत्नजड़ित अलंकार है, जिसने मेरे कुल को सौंदर्य से परिपूर्ण रखा, तेरा दामन पकड़कर मैंने अनेक विशिष्टताओं को प्राप्त किया, तेरे ही उपकार ने मेरी कौम को आम न रखकर खास बनाए रखा। तेरे रूठने से मेरी वही स्थिति होती जो छोटे शिशु की उसकी माँ के अकस्मात् दूर चले जाने पर हुआ करती है। तेरी अनुकम्पा के फलस्वरूप मेरी कौम आदर्शता का मूर्तिमान स्वरूप बनकर सभी के लिए प्रेरणापुंज का कार्य करती रही। तेरे नाम में ही इतना प्रभाव है कि कोई वक्ता मर्यादा शब्द का उच्चारण करता है तो श्रोता के हृदय में जागृति का अंकुरण होने लगता है और वह गौरवपूर्ण जीवन की ओर अग्रसर होता है।

तू अभिभावक का भी दायित्व निभाया करती है, तू जहाँ होती है वहाँ विश्वास, यथार्थ प्रेम व क्षात्रत्व की मौजूदगी रहती है। इसलिए तुझे यदि मातेश्वरी की उपमा दूं तो भी कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी क्योंकि तूने ही जीवन के प्रत्येक मैदान में कैसे व कितना क्रिड़ामग्न होना है इसकी सीमाएँ बताई, माँ की भाँति अंगुली थामे रखी, जिसके बलबूते पर मेरे पूर्वजों ने संसार में श्रेष्ठता की सीमाएँ बना डाली। जिससे मेरी कौम का स्वरूप विस्तृत व महान बना।

त्रेतायुग तो तुम्हारे प्रचण्ड प्रवाह से तेरे ही नाम का दूसरा पर्याय बन चुका था, जिसमें रामायण जैसे ग्रन्थ ने तेरी व्याख्या में जगख्याति पाई, जिसका प्रत्येक पात्र तेरे शब्द की क्रियान्विति का अनूठा उदाहरण है। तेरी उपस्थिति के परिणामस्वरूप मेरी कौम को संसार रक्षक व पोषक के भाव से देखा करता था। तूने सदैव मेरी कौम को विषैले वातावरण का भागी बनने से रोककर उसे गरिमायुक्त जीवन जीने के लिए प्रेरित किया तथा एक समर्थ गुरु की भाँति सुरक्षा कवच बनकर निन्दनीय व कलंकित कार्यों से बचाए रखा, जिसके परिणामस्वरूप मेरी जाति स्वरूपा माँ का यश व कौशल सूर्य के प्रकाश की तरह चहुंओर फैला रहता, जिसे देखकर देवलोक के देव ईर्ष्या करने लगते थे।

परमात्मा भी मेरी कौम की ललनाओं में मर्यादा की उत्कृष्ट अवस्था को देखकर उनकी गोद में खेलने के लिए बार-बार इस कौम के प्रांगण में अवतरित होते थे। जिसके साथ अपनेपन की गहराई होती है वहाँ सम्बोधन के शब्दों का महत्त्व नहीं रहकर संबंध प्रधान हो जाता है-कुछ इसी प्रकार का तेरा अपनापन मेरी कौम के संग रहा है। मर्यादा तेरी ममता से वशीभूत होकर क्षत्राणियाँ तेरे रक्षण हेतु अपने प्राणों की चिंता त्याग जलती आग में कूद पड़ती थी व क्षत्रिय पुरुष, अवसर उपस्थित होते ही उनके सिर पर अदृश्य केशरिया सवार हो जाता था तथा उस वीरता की सुनहरी फसल के फल को केवल मैंने या मेरी कौम ने न भोगकर उसे संसार को दिया जिसके परिणामत: राष्ट्र ने गुरुपद पाकर विश्व को यथार्थता का उपदेश दिया।

पर हे मर्यादा! मेरी कौम का वर्तमान तेरी उपेक्षा का शिकार होता चला जा रहा है, अब तेरी ममता के प्यासे, तेरे अपने, तुझे ढूंढ़ रहे हैं, कोई काल ऐसा था जिसमें तू मेरी कौम के घट-घट में निवास करती थी, पर अब तू भी अपने पुत्रों में पात्रता ढूंढ़ती है। जिससे अभिभावक लोग परिवार, समाज व गौरवशाली इतिहास के प्रति अपने उत्तरदायित्व को भूलकर स्वच्छन्द जीवन की दौड़ दोड़ रहे हैं, जिसे देखकर उनके बच्चे उनका ही अनुसरण कर रहे हैं। जिससे त्याग, मर्यादा व क्षयित्व जैसे आदर्श शब्द उनके विषय से बाहर की वस्तु लगने लगे हैं। तेरे ही पुजारियों के वंशज आज आनन्द व आजादी की भूख में तुझे भूलते जा रहे हैं, इसलिए प्रत्येक परिवार में तेरी उपस्थिति की माँग है। पर उसके लिये तू भी संस्कारों की अभ्यास स्थली, सत्संग व श्रेष्ठ प्रणाली रूपी राशि माँगती है।

गतांक से आगे

पृथ्वीराज चौहान

– विरेन्द्रसिंह मांडण (किनसरिया)

पृथ्वीराज चौहान–भादानकों व चन्देलों से टकराव (भाग–2)

पिछले अंक में हमने पृथ्वीराज चौहान के भादानकों व चन्देलों पर आक्रमण (1181–83 ई.) और उससे जुड़ी कड़ियों पर विभिन्न स्रोतों की जानकारी देखी।

– नैणसी की ख्यात और ग्वालियर के कछवाहा शिलालेखों के आधार पर निर्मित कछवाहा वंशावली से तो पज्जूण राय का अस्तित्व वर्णित घटनाओं के कम से कम 50 वर्ष बाद का सिद्ध है (पृ. रा.वि., पृष्ठ 192–4, पृ. 24–25)। पृथ्वीराज के समकालीन किसी स्रोत में इस नाम के किसी सामंत का कोई वर्णन नहीं। बताया गया उपनाम यानी कछवाहा शब्द 12वीं शताब्दी में प्रचलन में ही नहीं था, अपितु उन्हें उस समय कच्छपघात कहा जाता था। कछवाहा वंश का प्रभाव 16वीं सदी में बढ़ा। इस कारण जहाँ रासो के बड़े संस्करण कछवाहा योगदान के महिमामण्डन में विशेष रुचि लेते दिखाई देते हैं, वहीं लघुतम संस्करण में कछवाहा सामंत का बस नाम पल्हन राय देने के अतिरिक्त कुछ उल्लेखनीय नहीं बताया गया है। ये विसंगति उसी प्रकार की है जैसे रासो ने जयचंद्र को गहड़वाल से राठौड़ बना दिया, जिनका चरम काल भी 15वीं–16वीं सदी ही था।

– रासो की भाँति आल्हा खंड में तोपें चल रही हैं। यहाँ पृथ्वीराज ने चंदेल सेनाओं पर प्रयोग किया है। मध्यकाल में उत्तर भारत का तोपों से साक्षात्कार 16वीं सदी के आरम्भ में ही हुआ था।

– यदि कछवाहों को कच्छपघातों से निकला मानें तो पृथ्वीराज के जन्म से पूर्व ही कच्छपघात सामंतों का चन्देलों की आधीनता से निकल ग्वालियर से स्वतंत्र राज्य स्थापित करना, पृथ्वीराज के काल में भी अपने सिक्के ढालना, महाराजाधिराज जैसी उपाधियाँ धारण करना और पृथ्वीराज की मृत्यु के 5 वर्ष बाद अंततः 1197 ई. कुतुबुद्दीन ऐबक के हाथों नष्ट होना। ये सब तथ्य सिद्ध करते हैं पृथ्वीराज का विस्तृत राज्य दर्शाण नदी तक तो नहीं पहुँचा था। क्योंकि तब का भूगोल तो हमें चम्बल व दर्शाण नदियों के बीच परिहारों और कच्छपघातों को बैठे दिखाता है, जिन्हें पृथ्वीराज के अधीन मानने हेतु कोई साक्ष्य उपलब्ध नहीं।

– परमार्दि चंदेल के अनेकों शिलालेख और तज–उल–मासिर दोनों ओर के साक्ष्य स्थापित करते हैं कि चंदेल राजा ने पूर्वजों की भाँति अपनी सभी ऊँची उपाधियों (वो उपाधियाँ जो उस काल में केवल स्वतंत्र राजाओं के लिए उपयोग करना सम्भव थीं) सहित कलिंजर से 1202 ई. में ऐबक के आने तक शासन किया। सो ये मानना पड़ेगा कि पृथ्वीराज के धावे चाहे जितने विध्वंसकारी रहे हों, उनके बाद परमार्दि ने एक स्वतंत्र राजा के रूप में अनेकों सामंतों को अधीन रखते हुए राज्य किया।

– परमार्दि को पृथ्वीराज के अभियान से कितनी मान हानि हुई ये तो 14वीं सदी के वृतांत जैसे ''परमार्दि ने तृण (घास का तिनका) मुंह में दबा पृथ्वीराज से याचना की'' प्रकट कर देते हैं। कई अन्य स्रोत भी इस रोमांचकारी विजय अभियान की सफलता व्यक्त करते हैं। पर क्या शत्रु का ये मानमर्दन चौहान राज्य का भू-भाग बढ़ा सका? महोबा दुर्ग में सर एलेग्जेंडर कनिंघम को मिले एक शिलालेख में लगता है कि परमार्दि का शासन वहाँ पृथ्वीराज के प्रसिद्ध अभियान के मात्र दो वर्ष में ही स्थापित था।

– परमार्दि के द्वारा 1202 ई. तक दशार्णाधिपति जैसी उपाधियाँ रखने से तो यही निश्चित होता है कि जेजाकभुक्ति राज्य के पश्चिमी क्षेत्र (दशार्ण नदी के आगे तक) भी उनके नियंत्रण में ही थे। उस क्षेत्र में अभियान करने के बाद भी ऐसी कोई उपाधि पृथ्वीराज ने धारण नहीं की।

– परमार्दि के बचाव में पृथ्वीराज की सेना से जयचंद्र की सेना के भिड़ने की बात भी संदेह की छाया में है। क्योंकि जयचंद्र और उनके पूर्वजों का तो परमार्दि से पहले के चंदेल शासकों (जयवर्मन, मदनवर्मन) से संघर्ष हुआ सिद्ध है।

पर भाटों का क्या करें, जो एक ओर तो जयचंद्र परमार्दि का गठबंधन खड़ा कर देते हैं, और दूसरी ओर ये भी बता देते हैं कि परमार्दि ने जब एक बार रुष्ट होकर बनाफर सेनापति आल्हा, उदल को निकाल दिया तो दोनों जयचंद्र की सेवा में चले गए। एक राजा के निष्कासित किए हुए सेनापतियों को उसका मित्र राजा अपनी सेवा में ले ऐसा मनोहर कथाओं में तो सम्भव है, वास्तविक धरातल पर घटती कठोर राजनीति में नहीं।

सम्भव है कि पृथ्वीराज-जयचंद्र की कालसंगत क्षत्रिय प्रतिस्पर्धा (जिसमें कोई अनोखी बात नहीं) को देख भाटों ने जयचंद्र को खलनायक बनाने को एक ऐसे युद्ध में खींच लिया जहाँ पृथ्वीराज ने विजय प्राप्त की थी।

पीछे हमने जितने साक्ष्य व तर्क रखे उनसे अंततोगत्वा स्थिति दो विकल्प देती है।

– या तो पृथ्वीराज के द्वारा चंदेल भूमि जीतना और अपने सामंत को दे जाना केवल भाटों का मायाजाल है,

– या फिर दशार्ण नदी के पश्चिम में जीता हुआ क्षेत्र अगले कुछ ही वर्षों में परमार्दि चंदेल अथवा अन्य स्थानीय शक्तियों द्वारा वापस ले लिया गया।

इस लेखक की निजी मान्यता से तो इतने अन्वेषण की भी आवश्यकता नहीं थी। क्योंकि विजयश्री की उद्घोषणा करता पृथ्वीराज का मदनपुर शिलालेख कहीं भी यह नहीं कहता कि शत्रु से भूमि ली या अधीनता स्वीकार करवाई। वर्णन केवल अभियान की गति और उसके भयंकर (तत्कालीन) प्रभाव का है। अभियान के समापन पर चंदेल राजा से अच्छा खासा दंड धनार्जन किया गया हो यह भी अजमेर राज्य की शुष्क जलवायु और सामान्य आर्थिक स्थिति को देखते हुए सम्भव है। भादानक व जेजाकभुक्ति, दोनों अभियान कदम्बवास और भुवनैकमल्ल के मार्गदर्शन में संपन्न हुए।

अब तक हमने पृथ्वीराज के व्यक्तित्व और आरम्भिक जीवन की रूपरेखा खींची। आर्यावर्त के क्षितिज पर उनका दनदनाते हुए प्रवेश एक के बाद एक सैन्य अभियानों के शक्ति प्रदर्शन से होता है। इनसे राज्य को धनलाभ तो हुआ होगा, पर बाद में लिखते भाटों के कल्पना जगत से बाहर हमें कोई बड़ा/स्थाई राज्य विस्तार देखने को नहीं मिलता। अजमेर नरेश की इन गतिविधियों से निकटवर्ती सभी राज्यों की राजनीति में तीव्र हलचल होना स्वाभाविक था, जिसके परिणाम हम अगले अंकों में देखेंगे।

उद्धरण : 1. ग्वालियर दुर्ग से राजा अजयपालदेव के शिलालेख-1192 व 1194 ई. एपिग्राफिया इंडिका खण्ड 38, पृ. 132-34, 2. तज उल मासिर-ए हिस्ट्री ऑफ इण्डिया एज टोल्ड बाइ इट्स ओन हिस्टोरियन्स, खण्ड 2-हेनरी मायर्स इलियट पृ. 231; कालिंजर शिलालेख 1201 ई., इंडियन एंटीक्वेरी खण्ड 19, पृ. 354, 3. शारंगधर पद्धति, ले. शारंगधर, सं. पीटर पीटरसन, प्र. चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान-श्लोक 1254; जग्गदेव प्रबंध अध्याय-प्रबंध चिंतामणि, ले. आचार्य मेरुतुंग, प्र. सिंघी जैन ग्रंथमाला, पृ. 143, 4. आर्केओलॉजिकल सर्वे रिपोर्ट, खण्ड 21, पृ. 71, 5. कालिंजर शिलालेख 1201 ई., इंडियन एंटीक्वेरी खण्ड 19, पृ. 354, 6. पृथ्वीराज चौहान के मदनपुर शिलालेख 1182 ई., रिपोर्ट ऑफ टूर्स इन बुंदेलखंड एंड मालवा इन 1874-75 एंड 1876-77- एलेग्जेंडर कनिंघम, पृ. 98-100, 7. जग्गदेव प्रबंध अध्याय-प्रबंध चिंतामणि, ले. आचार्य मेरुतुंग, प्र. सिंघी जैन ग्रंथमाला, पृ. 143

गतांक से आगे

यदुवंशी करौली का इतिहास

– राव शिवराजपाल सिंह इनायती

महाराजा भँवर पाल जी के शासनकाल में वर्ष 1906 में अंग्रेजी सिक्कों को मान्यता देकर स्थानीय टकसाल को बंद कर दिया गया। 1906 में ही फिर अकाल पड़ा जिसमें रियाया को रोजगार और भोजन देने के लिए कुछ बांध बनवाए गए, जिससे रियासत के ऊपर फिर कर्जा हो गया। 1908 में ग्वालियर के साथ सीमा विवाद भी उठ खड़ा हुआ जिसे अंग्रेज सरकार की मध्यस्थता से सुलझा लिया गया।

महाराजा भंवर पाल जी के समय की सबसे महत्त्वपूर्ण घटना चिमन सिंह का उत्कर्ष और पराभव रहा, जिसके किस्से आज भी मशहूर हैं। जयपुर राज में निवाई के पास सोयला निवासी चिमन सिंह का मगन सिंह कैला वाले के यहाँ रिश्तेदारी की वजह से था। सोयला में आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं होने से इसने छः रुपये प्रति मास के मामूली वेतन पर राजमाता की ड्योढी पर नौकरी प्रारम्भ की। तीव्र बुद्धि का होने की वजह से शीघ्र ही वहाँ से वह महाराजा के व्यक्तिगत विभाग में लगा दिया गया। इस विभाग में महाराजा से सीधे सम्पर्क का इसने लाभ उठाया और एक दिन ऐसा भी आ गया जब महाराजा का खास मर्जीदान बनकर रियासत में अघोषित सर्वेसर्वा हो गया। बद्धिजीवी ब्राह्मण समाज का साथ पाने के लिए उसने राज कोश के खर्चे पर विभिन्न धार्मिक आयोजन करवाना शुरू कर दिया। लम्बे समय पर्यन्त चलने वाला गोपाल यज्ञ, जिसमें अनाप-शनाप प्रतिदिन का खर्च, सोने चाँदी आदि की दान दक्षिणा दी गई। गोपाल मंदिर का निर्माण भी महाराजा को समझा बुझाकर करवाया गया, लेकिन इसका भी व्यय राजकोष से ही हुआ। इसी दौरान इसने एक दिन महाराजा से कुडगाँव के पास काचरोदा अपने पालतू जानवरों के लिए घेर बनवाने हेतु अनुमति ली और घेर के बहाने चुपचाप एक गढ़ी का निर्माण करवा लिया। चिमन सिंह का महलों में निर्बाध आना-जाना होने से किसी राज कर्मचारी की मजाल नहीं थी जो उसका आदेश टाले या महाराजा को इसकी शिकायत करे। महाराजा इस की बात इस तरह मानते थे कि एक दिन इसने अपने नाम के साथ महाराजा का खुद का नाम जोड़ने की अनुमति ले ली और उस दिन से खुद को भंवर चिमन सिंह कहलाने लगा, इसके साथ ही पैरों में सोना और हाथी की स्वीकृति भी ले ली। राज की बिगड़ती आर्थिक हालत को देख और महाराजा को इसके हाथों का खिलौना बना देख हाड़ोती के राव भोमपाल जी बार-बार भंवरपाल जी को सचेत करने लगे। जिसका परिणाम यह निकला कि चिमन सिंह भोमपाल जी से भी खुंदक रखने लगा और उनके विरुद्ध राजा के कान भरने लगा कि राव साहब आपके खिलाफ षड्यंत्र कर रहे हैं। इसी दौरान एक दिन महाराजा की सवारी में महाराजा के हाथी के पीछे राव भोमपाल का हाथी था और उनके पीछे चिमन सिंह अपने हाथी पर था। बाजार में चिमन सिंह के कहने से फीलवान ने हाथी राव साहब के हाथी से आगे लेकर राजा के हाथी के बराबर लेना चाहा। राव भोमपाल को राजा के हाथी के बराबर चिमन सिंह का हाथी चलने की हरकत नागवार गुजरी, और उन्होंने वहीं

सवारी के बीच उस पर अपनी बंदूक तान ली। बहुत दुखी मन से चिमन सिंह को अपना हाथी पीछे हटाना पड़ा, लेकिन वह इस अपमान का बदला लेने के अवसर की टोह में महाराजा के कान उनके चचेरे और एक समय के सबसे प्रिय भाई के विरुद्ध भरने लगा। कानों के कच्चे और चिमन सिंह के अंधभक्त महाराजा ने राव साहब को खूबनगर की गढ़ी में नजरकैद कर दिया। जिसकी शिकायत करौली के प्रमुख ठिकानेदारों ने पॉलिटिकल एजेंट से की। जाँच अधिकारी आया और शिकायत सच पाई जाने पर राव साहब छः माह बाद खूबनगर की गढ़ी से आजाद हुए। पॉलिटिकल एजेंट ने जब शिकायतों की गहनता से जाँच की तो चिमन सिंह को राजकोष और अधिकारों के दुरुपयोग का दोषी पाया और काचरोदा गढ़ी और अन्य संपत्ति जब्तराज कर करौली राज से निष्कासन का आदेश दे दिया। महाराजा इसके इतने अंधभक्त थे कि जब यह करौली से निकला तो स्वयं भी चौधरी भोलानाथ को करौली राज्य त्याग का पत्र देकर इसके साथ कैलादेवी पहुँच गए। चौधरी भोलानाथ ने परिपक्वता दिखाते हुए वह पत्र पॉलिटिकल एजेंट को नहीं भेजकर, रात को ही नारायण लाल, हरप्रसाद और गंगाप्रसाद को कैलादेवी भेजा और चिमन सिंह को रात में ही चुपचाप निकल जाने को कहा। चिमन सिंह के जाने के बाद इन्होंने महाराजा को कड़े शब्दों में बहुत ऊँच-नीच समझाई और वापस करौली ले आए। निष्कासन के बाद भी करौली में हस्तक्षेप को देख पॉलिटिकल एजेंट ने चिमन सिंह के करौली राज की सीमा से लगने वाले किसी भी राज्य में प्रवेश पर पाबंदी लगा दी, और उसे अपना अन्तिम समय वृंदावन में व्यतीत करना पड़ा। यद्यपि इसका पुत्र मदन सिंह खुलकर तो राज्य का विरोध नहीं कर पाया लेकिन स्वतंत्रता आंदोलन और बिहार प्रथा के विरोध के नाम पर कुछ छुटपुट आंदोलन किए।

महाराजा भंवर पाल के शासनकाल में चिमन सिंह की फिजूलखर्ची की वजह से राज्य की आर्थिक हालत बहुत बिगड़ जाने पर 1910 में पॉलिटिकल एजेंट ने आर्थिक मामलों में राजा के अधिकारों में कटौती कर दी जो 1917 में ही बहाल हो पाई। 1911 में दिल्ली में आयोजित दरबार में करौली महाराजा को आमंत्रित किया गया लेकिन पॉलिटिकल एजेंट द्वारा राज्य की माली हालत खस्ता देखकर मुल्तवी करवा दी गई। 1917 के बाद महाराजा ने कैलादेवी में विशाल धर्मशाला और कुंवे का निर्माण शुरू करवाया जो उनकी मृत्यु बाद ही पूरा हुआ, इसके साथ ही माता के भवन और परिसर में भी कुछ निर्माण करवाए गए। करौली में आपके समय में ईस्वी सन् 1922-23 में बिजलीघर बना और विद्युत प्रकाश से शहर आलोकित हुआ और इसी वर्ष इन्होंने भंवर बैंक भी खोला। महाराजा भंवर पाल ने अपने भाई राव भोम पाल से हुए मनमुटाव से उबरते हुए उनके पुत्र गणेश पाल जी को राज के खर्चे पर मेयो कॉलेज पढ़ने भेजा, जहाँ रहकर उनके व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास हुआ। महाराजा भंवर पाल जी का स्वर्गवास 3 अगस्त, 1927 को पीठ में हुए फोड़े की वजह से हुआ। परम्परा और इनकी इच्छा के अनुसार इनके बाद गद्दी पर हाड़ोती के राव भोम पाल जी की गद्दी नशीनी हुई और हाड़ोती की गद्दी पर महाराज कुमार गणेश पाल जी राव हाड़ोती के रूप में बैठे। **(क्रमशः)**

बुद्धिमानों ने अपनी लौकिक उन्नति, पारलौकिक सुख और मुक्ति प्राप्त करने के लिए क्रोध पर विजय प्राप्त की है। – **युधिष्ठिर**

तनसिंह जी एक नहीं अनेक

– श्रीमती कमलेश रामदेरिया

उपरोक्त शीर्षक के अन्तर्गत लिखी गई सामग्री प्रस्तुत करने से पूर्व मैं इसके लेखक के व्यक्तित्व के बारे में बताना चाहती हूँ। वे आज हमारे बीच यदि होते तो अपने श्रेष्ठ कार्यों से अपना परिचय पू. तनसिंहजी के पौत्र के रूप में प्रकट करते। वे बहुत प्रतिभाशाली व्यक्तित्व के धनी थे। वे अपने क्षात्रधर्म के प्रति जागरूक श्री क्षत्रिय युवक संघ के युवा स्वयंसेवक थे। विधि का विधान है कि जो आया है, उसका एक दिन जाना आवश्यम्भावी है, आज वे हमारे बीच नहीं हैं पर मेरे स्वयं के अनुभव से, विचारों से, वे हमेशा हमारे बीच में थे, हैं और रहेंगे।

वे बचपन से ही बड़े मेधावी छात्र रहे। बचपन से ही बोलने में बड़े होशियार थे। तार्किक क्षमता का गुण तो जैसे उन्हें विरासत में मिला था। पढने-लिखने में होशियार होने के कारण उनकी बचपन की सारी बदमाशियाँ यों ही माफ कर दी जाती थी। पर बचपन से ही उनके अन्दर एक दर्द था। एक खालीपन उन्हें महसूस होता था। वह था-पू. तनसिंहजी (दाता) जैसे महापुरुष के यहाँ पौत्र के रूप में पैदा होने के बाद भी दादोसा के रूप में उनका स्नेह नहीं पा सका, यह उनको बड़ा अखरता था। वे बताते थे कि जब वे शिविर में जाते थे तो ध्वज के नीचे हमेशा एक फोटो लगा रहता था। खाकी साफा, खाकी कमीज व धोती पहने हुए एक देवता रूपी महापुरुष की फोटो, जो उसके दाता की है। यह देखकर उनका स्नेह न पा सकने का अभाव खटकता था।

बचपन में, छोटी सी उम्र में एक परिपक्व व्यक्ति जैसी सोच और विचार उनके मस्तिष्क में आने लगे। उन्हीं विचारों को मन में सहेजते हुए वे बड़े हुए। अपनी जिन्दगी में सांसारिक दृष्टि से वे सफलता हासिल करते हुए आगे बढे। पर यह सफलता उन्हें सफलता नहीं लगती थी। मन में प्रगाढ जिज्ञासा थी और क्षत्रिय होने के नाते क्षात्रधर्म का पूर्ण निष्ठा से पालन करने की इच्छा मन में थी जिसका निर्वहन करना चाहते थे। अपने दाता (पू. तनसिंहजी) के पद्‌चिन्हों पर चलने का प्रयास बना रहता था। क्षत्रिय कुल में जन्म मिलना एक सौभाग्य समझते हुए अपना जीवन क्षात्रधर्म के हित में ही जीना चाहते थे। क्षत्रिय कौन? क्षतात् त्रायते इति क्षत्रिय'। सरल रूप में समझें तो क्षात्रत्व का अर्थ है-जिसकी उपस्थिति में लोगों को शान्ति का, प्रसन्नता का और सुरक्षा का अनुभव हो, वही क्षत्रिय है। इसी इच्छा के साथ अपना जीवन जीना चाहते थे पर ईश्वर ने उन्हें मजबूत करने के लिए चुनौतियों भरा जीवन जीने के लिए छोड़ दिया। ईश्वर इच्छा समझकर डटकर इन चुनौतियों का सामना करते हुए अपने परिवार के साथ सदैव खड़े रहे। अपने मन के विचारों को एक दिन कागज पर लिखने की इच्छा हुई, जो लिखा वह है –

तनसिंहजी एक नहीं अनेक

लगभग सात-आठ साल का था, तब से लिखने की सोच रहा था। पर मेरे आलस्य की पराकाष्ठा देखिए कि आज पैंतीसवें वर्ष में प्रवेश कर रहा हूँ तब आलस्य त्याग कर लिखना शुरू कर रहा हूँ। कुछ आलस्य था और कुछ संकोच भी था कि जब भावों को खब्दों में उतारूँगा तो लोग हँसेंगे तो नहीं। खैर, वैसे भी इस जीवन में मैंने कोई ऐसा खास काम तो किया नहीं है, लोग तो वैसे भी हँसते ही होंगे, तो मेरे भावों को पढकर एक बार और हँस लेंगे। वैसे भी लोगों को आजकल हँसने का कहाँ मौका मिलता है।

अब लिखने का सोच ही लिया है तो अगला प्रश्न उठता है कि लिखूँ क्या? समाज के बारे में जब सोचता हूँ तो लगता है आज के भौतिकवादी जीवन में जीवनयापन बड़ा ही दूभर हो गया है। बेरोजगारी मेरी उम्र के लोगों में सबसे बड़ी समस्या है। राजनैतिक दल जो सत्ता में होता है, कुछ भर्तियाँ निकालता है पर वे भी अधिकतर कोर्ट में आकर रुक जाती हैं। कुछ कम नहीं रुकती है तो वे भी आबादी की संख्या में ऊँट के मुँह में जीरा समान है। प्रधानमंत्री तो कहते हैं नौकरियों में क्या रखा है, आप तो उद्यमी बनो और लोगों को नौकरियाँ दो (शायद इससे सरकारों पर दबाव कुछ कम हो जाए)। समाज में बेरोजगारी की समस्या देखकर मुझे भी लगा कि अब सघ से, शिविरों से दूर रहकर प्रतियोगिता की तैयारी की जाए ताकि नौकरी लगे। नौकरी होगी तो बीबी होगी, बीवी होगी तो बच्चे होंगे, आदि आदि विचार मन में चल पड़े। वैसे अन्दर की बात बताऊँ तो मैं इस मामले में सौभाग्यशाली था कि मेरे ससुर साहब ने वगैर नौकरी के ही मुझे अपनी बेटी सौंप दी। शायद इसमें मेरे परिवार की सामाजिक और मेरे पिता की आर्थिक हैसियत कारण रही हो।

खैर, अपने मुद्दे पर आते हैं। मैंने श्री क्षत्रिय युवक संघ से दूरी बनाकर प्रतियोगी परिक्षाओं की ओर कदम बढाए और एक दिन मेरा सपना भी सच हो गया। मेरी नौकरी लग गई। बीबी तो पहले ही मिल गई थी। एक बच्ची का पिता भी बन गया, गाड़ी भी आ गई, एक मकान भी ले लिया। सांसारिक दृष्टि से मेरा जीवन सुगम राह पर आ गया था। अब रोज सोमवार से शुक्रवार, शनिवार तक कार्यालय में सुबह से कब शाम हो जाती थी, पता ही नहीं चलता। सिलसिला चलता रहा पर जब भी शनिवार या रविवार को कार्य के दबाव से मुक्त रहता हूँ तब उदासी के साथ विचार आता है कि यह जीवन तो उस कुत्ते की तरह हो गया जो दिन भर रोटी के टुकड़े की तलाश में मारा-मारा फिरता है और शाम को घर आता है। चौरासी लाख योनियों के बाद यदि इंसान रूपी कुत्ता ही बनना था तो इससे तो अच्छा था कुत्ते की योनि में ही जन्म होता। बाड़मेर के मेरे एक बड़े भाई साहब हैं, वे उम्र में मेरे पिता से भी बड़े हैं, उन्होंने एक बार कहा था कि कपूरड़ी के एक बुजुर्ग थे जो कहा करते थे कि-'कुत्ते भी कमाते हैं, तुम कमाकर कौनसा बड़ा काम कर रहे हो।' आज मुझे भी वैसा ही अनुभव हो रहा है।

खैर, मुल्ले की दौड़ मस्जिद तक, पहुँच गया फिर वहीं जहाँ से भागा था। अपनों ने पूछा-कैसे हो? मैंने कहा सोमवार से शुक्रवार का तो पता ही नहीं चलता पर शनिवार, रविवार को कुत्तापन का अहसास होता है। हँसते हुए उन्होंने कहा कि एक सामाजिक संस्था प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी हेतु प्रशिक्षण कक्षाएँ चलाती है, अच्छा काम कर रही है और समाज के कई बच्चों को नौकरियाँ भी मिल गई हैं। मैंने पूछा-तो? वे बोले-पर उनमें से एक ने अपने पिता के सिर पर जूता मार दिया। कुछ देर तक मैं उनका आशय समझ नहीं पाया पर फिर समझ आया कि नौकरियों के लिए प्रशिक्षण तो आवश्यक है पर श्री क्षत्रिय युवक संघ के प्रशिक्षण के अभाव में जीवन विकृति की ओर भी बढ सकता है।

धीरे-धीरे कुत्तापन का अहसास कम होने लगा। मैं बाड़मेर के मेरे एक बड़े पिताजी का स्मरण करने लगा जो मुझे, जब मैं 6-7 वर्ष का था, तब भीमगोड़ा (सिवाना, बाड़मेर) के संघ के माध्यमिक शिविर में ले गये थे। भला हो उनका जिनके कारण मैं संघ से जुड़ा। वह मेरा पहला शिविर था और नौकरी हेतु प्रशिक्षण के पहले मुझे श्री क्षत्रिय युवक संघ में प्रशिक्षण प्राप्त हुआ। वैसे संघ से सम्बन्ध मेरी माँ की

कोख में ही बन गया था, जब मैंने पू. तनसिंहजी के पुत्र के पुत्र (पौत्र) के रूप में जन्म लिया। हालांकि बचपन में अपने दादोसा को खाकी कमीज, खाकी साफा और काली दाढी वाला बाबा ही समझता था। उनकी फोटो हर शिविर में ध्वज के नीचे दिखती थी। धीरे-धीरे मैंने संघ के कई शिविर किये और इस संघ परिवार में अनेक लोगों से मिला और हर एक से विशेष स्नेह और आत्मीयता मिली जिससे मैं अपने आपको सौभाग्यशाली समझने लगा।

जब मैं लगभग 15 वर्ष का हुआ हल्दीघाटी में आयोजित श्री क्षत्रिय युवक संघ के उच्च प्रशिक्षण शिविर में अपनी सौभाग्यशालिता के साथ एक उदासी का भाव भी जागृत हुआ। संघ परिवार में मेरे कुछ वरिष्ठ बन्धुओं ने मेरी उदासी को देखा और कारण जानना चाहा। मैंने अपनी भावुकता में ही उन्हें कहा कि अगर ईश्वर मुझ पर इतना ही मेहरबान हुआ कि मुझे पू. तनसिंहजी के पौत्र के रूप में जन्म दिया तो थोड़ी और मेहरबानी करते कि या तो सन् 1982 के बजाए मुझे 1979 (पू. तनसिंहजी का निर्वाण वर्ष) से पहले जन्म देते ताकि मैं उनके दर्शन कर पाता और उनके स्मरण के साथ पूरा जीवन जी लेता या उन्हें 1979 की बजाए 1982 के बाद तक रहने देते ताकि मैं उनका स्नेह पा सकता। इतना कहते ही मेरे भाव शब्दों की बजाए मेरी आँखों से आँसू के रूप में छलक गये। शिविर में मुझे मेरे अपनों ने छाती से लगाया और उनके प्रेम के आगोश में मैं अपनी उदासी से मुक्त हुआ। उस शिविर के पश्चात मेरे जीवन में काफी बदलाव हुए।

मैं कुछ समय के लिए राजस्थान से बाहर भी चला गया जहाँ एक पौत्र को दादा के हाथों में खेल न पाने का मलाल कभी-कभी उभर आता। समय के साथ जब मेरी सोच भी एक छोटे स्वयंसेवक से एक वयस्क स्वयंसेवक की हुई तो मुझे अपने आस-पास कई तनसिंहजी नजर आने लगे -

गुरु गोविन्द दोऊँ खड़े, काके लागूं पाय।
बलिहारी गुरुदेव की जिन गोविन्द दियो बताए।।

मेरे क्षत्रिय युवक संघ के वे सारे गुरु मेरे लिए तनसिंहजी से भी बढकर हैं, जिन्होंने तनसिंहजी के शब्दों से भाव निकाल कर मेरे सामने तनसिंहजी के उस चित्र को प्रस्तुत किया जिसको शायद मैं इन्हें जीते जी भी देख लिया होता तो भी नहीं समझ पाता।

मेरे सभी दादोसा तुल्य गुरुओं में ही मुझे तनसिंहजी का रूप दिखता है। उनके मुख से तनसिंहजी के साथ उनके बिताये हुए पलों की बातें जब मैं सुनता हूँ तो मुझे तनसिंहजी की उपस्थिति मेरे करीब महसूस होती है। उनके नेत्र जब मेरे नेत्रों में देखते हैं तो मुझे अपने दादोसा की झलक दिखती है। आज तो अन्य कई लोग भी तनसिंहजी के बारे में बात करते हैं, पर ये वे लोग हैं जिन्होंने पू. तनसिंहजी को जाना है, समझा है और अपना सर्वस्व त्याग कर उनके समाज रूपी संघ परिवार में हमसफर बने हैं। बेशक कई बार मुझे एक तनसिंहजी की कमी खलती थी, पर उसमें एक पौत्र का स्वार्थ था। पर आज मुझे बहुत से तनसिंहजी दिखते हैं, जिनके बारे में भी समय आने पर बात करूँगा, आपके साथ चर्चा करूँगा। रात बहुत हो गई है और कल सोमवार है, मुझे तो वापिस काम पर जाना है पर यकीन मानें इन सारे तनसिंहजी के पास समाज को छोड़कर और कोई काम नहीं है। इनके न सोमवार है न रविवार है, संघ कार्य में ही हर वार है। इन हनुमान रूपी तनसिंहजी के भक्तों को मेरा नमन। इनको मैंने पिछले 30 वर्षों से परखा है और मैं इनकी समर्पण भावना का कायल हूँ।

अब आप ही मेरे आइने से देखिए और सोचिए कि मेरी नजर में एक ही तनसिंहजी हैं या अनेक तनसिंहजी हैं।

गतांक से आगे

छोड़ो चिन्ता-दुश्चिन्ता को

– स्वामी जगदात्मानन्द

प्रेम की विजय :

अपने सुन्दर ग्रन्थ 'प्रेम की शक्तियाँ' में प्रिट्रिम सोरोकिन कहते हैं, 'निस्वार्थ प्रेम में अत्यधिक-अधिकांश लोगों की कल्पना से भी अधिक-रचनात्मक तथा आरोग्यकारी क्षमताएँ होती हैं। प्रेम शारीरिक, मानसिक तथा नैतिक स्वास्थ्य के लिए जरूरी एक संजीवनी शक्ति है। परोपकारी लोग अहंकारी लोगों की अपेक्षा अधिक दीर्घायु होते हैं। स्नेह से वंचित बच्चे जीवन-शक्ति, नैतिक तथा सामाजिक दृष्टि से भी क्षीण हो जाते हैं। अपराधी, रुग्ण तथा आत्मघाती प्रवृत्तियों और घृणा, भय तथा स्नायु-रोगों के लिए प्रेम सर्वाधिक सबल प्रतिरोधक है। गहन तथा स्थायी सुख के लिए यह एक अपरिहार्य साधन है। यह अच्छाई तथा स्वाधीनता का सर्वोच्च रूप है। मानवता के उत्कर्ष हेतु यह सर्वश्रेष्ठ और सर्वसमर्थ शिक्षापरक शक्ति है। सभी मनुष्यों के प्रति समर्पित अपार प्रेम की शक्ति ही इस धरा के अन्तर्मानवीय संघर्षों पर विजय पा सकती है और मानव द्वारा मानव की आगामी परीक्षाओं को रोक सकती है। प्रेम के बिना कोई भी शस्त्रीकरण, युद्ध, कूटनीतिक चालें, उत्पीड़क पुलिस बल, विद्यालयी शिक्षा, आर्थिक या राजनीतिक उपाय और हाइड्रोजन बम तक, आसन्न अनर्थ को नहीं रोक सकते। यह चमत्कार तो बस प्रेम ही कर सकता है, बशर्ते हम उसके स्वरूप को ठीक-ठाक जान लें और उसके उत्पादन, संचय तथा उपयोग के सक्षम उपायों से भी परिचित हो जाएँ।'

प्रेम अमृतस्वरूप है। देखने में आया है कि इसमें शारीरिक और मानसिक विकारों के उपचार की शक्ति विद्यमान है। मन में घृणा का भाव रखने वाला व्यक्ति न केवल अपना मानसिक संतुलन खोता है, अपितु अपने जीवन और स्वास्थ्य को भी क्षति पहुँचाता है। दूसरी ओर प्रेम, सहानुभूति तथा मैत्रीभाव न केवल व्यक्ति को मानसिक शान्ति कायम रखने में मदद करते हैं, अपितु ये एक सन्तुलित दृष्टिकोण भी पैदा करते हैं। इन गुणों से युक्त व्यक्ति, हर तरह की परिस्थिति में शान्ति और आनन्द का अनुभव करेगा।

बालकों के विकास के लिए मातृसुलभ प्रेम बहुत जरूरी है। सच्चे प्रेम से वंचित होने वाले बालक उसी तरह बीमार हो जाते हैं जिस तरह संक्रामक रोग, क्षुधा या असन्तुलित आहार के कारण हो सकते हैं। इस विषय में रेने ए. स्पिट्ज ने हाल ही में शोध किया है। उन्होंने एक अनाथालय में 34 लावारिस शिशुओं की मृत्यु को फिल्माते हुए उसकी रिपोर्ट तैयार की। अनाथालय में उन शिशुओं को मातृप्रेम के अलावा हर तरह की देखभाल तथा सुविधाएँ उपलब्ध थीं। मातृप्रेम का अभाव ही उनकी मृत्यु का कारण सिद्ध हुआ। डॉ. स्पिट्ज ने बच्चों की प्राणशक्ति के निस्तेज होने की पूरी प्रक्रिया का फिल्मांकन किया था। अपने माता-पिता से वियोग के तीन महीने बाद शिशुओं की भूख चली गई, उन्हें ठीक से नीदं नहीं आती थी और वे सिकुड़े, काँपते तथा रोते रहते थे। दो महीने और बीतने पर वे जड़बुद्धि प्रतीत होने लगे। जन्म के पहले वर्ष में 27 और दूसरे वर्ष में 7 लावारिस शिशुओं की मृत्यु हो गई। 21 शिशु ही बचे रहे, पर वे भी इतने बदल गए कि बाद में उन्हें 'जड़बुद्धि' की श्रेणी में ही रखा जा सकता था।

मानसिक तथा नैतिक विकारों के इलाज और उनकी रोकथाम में प्रेम की आरोग्यदायी शक्ति विशेष

रूप से महत्त्वपूर्ण है। नवजात शिशुओं के नैतिक तथा मानसिक रूप से स्वस्थ मनुष्यों के रूप में विकास होने के लिए प्रेम का आदान और प्रदान दोनों ही अत्यन्त आवश्यक है। प्रेम न केवल व्यक्ति के मन तथा शारीरिक अवयवों का उपचार करके उसे स्फूर्ति प्रदान करता है, अपितु यह उसके विकास और मानसिक, नैतिक, हार्दिक तथा सामाजिक समृद्धि का एक निर्णायक तत्व भी सिद्ध होता है।....प्रेम करना और प्रेम प्रदान करना सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण 'विटामिन' का काम करते हैं और ये व्यक्ति के सम्यक् विकास तथा सुखमय जीवन के लिये अपरिहार्य है।

सेवा की भावना :

बहुत से लोग प्रेम तथा लगन के साथ अपने प्रियजनों की सेवा करते हैं; परन्तु कभी-कभी सेवा करने वाला अपने सेव्य पर अधिकार का भाव रखते हुए, उसे सर्वदा स्वयं पर आश्रित रखने का प्रयास कर सकता है। प्रेम के नाम पर वह उस पर बल का प्रयोग करते हुए उसके शोषण का प्रयास कर सकता है। वह प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से संकेत दे सकता है कि 'मेरी सेवा के बिना तुम असहाय होते'। वह यह भी कह सकता है कि 'मेरी सेवा का मुझे कोई प्रतिदान नहीं मिला'। वह सेवा के लिए बारम्बार धन्यवाद ज्ञापन की अपेक्षा रख सकता है। वैसे इस प्रकार अपनी सेवा के ज्ञापन की अपेक्षा रखने वाले, कम-से-कम उन लोगों से तो बेहतर ही हैं, जो घोर स्वार्थी हैं और सहायता करने से ही साफ मना कर देते हैं। परन्तु ऐसी सेवा विशुद्ध और नि:स्वार्थ प्रेम का द्योतक नहीं है। इसे नि:स्वार्थ प्रेम की ओर बढ़ने का एक कदम मात्र ही कहा जा सकता है। परन्तु हर कोई उस अवस्था तक नहीं पहुँच पाता।

प्रेमपात्र की स्वाधीनता तथा स्वाभिमान पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना ही सच्चा प्रेम अभिव्यक्त होता है। वह किसी प्रतिदान की माँग नहीं करता। आध्यात्मिक मनोभाव से युक्त तथा मातृत्व के आदर्श को स्वीकार करने वाली एक माता प्रेम के नि:स्वार्थ तथा दैवी गुण का दृष्टान्त प्रस्तुत करती है।

आत्मीयता की सीमाएँ :

सत्यभामा ने एक बार द्रौपदी से पूछा, 'आप किस प्रकार अपने पतियों को वश में रखती हैं? अपने पति श्रीकृष्ण को वश में करने के लिये मैं भी वही उपाय अपनाना चाहती हूँ।' द्रौपदी जानती थी कि कृष्ण तो पहले से ही सत्यभामा के वश में है। तथापि द्रौपदी ने उसे अपने पाँचों पतियों से प्राप्त प्रेम का रहस्य समझाते हुए कहा, 'मेरे पाँचों पति सौम्य, सत्यनिष्ठ तथा सद्गुणी हैं, पर मैं उनकी निरन्तर इस प्रकार सेवा करती हूँ मानो वे निर्दयी तथा क्रोधी हों। मैं उनकी अच्छाई पर निर्भर नहीं करती। उनकी जरूरतों की पूर्ति में मैं निरन्तर सजग तथा सावधान रहती हूँ। स्त्री के लिये उसका पति ही सर्वस्व है; वही साक्षात ईश्वर तथा एकमात्र ध्येय है। अपने पति के प्रति निष्ठा रखना ही स्त्री की एकमात्र धर्म-साधना है। मैं बड़ों के प्रति भी श्रद्धा तथा सम्मान का भाव रखती हूँ। मैं अपनी सास को बहुत आदर की दृष्टि से देखती हूँ। मैं उनके स्नान, भोजन, वस्त्र आदि दैनिक जरूरतों का ध्यान रखती हूँ। उनके भोजन या विश्राम के पूर्व मैं स्वयं भोजन या विश्राम नहीं करती। मैं उन्हें धरती माता समझकर उनकी पूजा करती हूँ। महल में जब अतिथि के रूप में हजारों विद्वान तथा महात्मा आते थे, तो मैं उनमें से प्रत्येक के आतिथ्य की निगरानी करती थी। महल में हजारों जरूरतों, कठिनाइयों और समस्याओं से परिचित थी। मैं युधिष्ठिर की घुड़साल के हजारों घोड़ों के रख-रखाव की व्यवस्था करती थी। मेरे पतियों ने घरेलू मामलों का भार मेरे ऊपर छोड़ दिया था और स्वयं को अपने प्रशासनिक कर्तव्यों में

मनोनियोग किया था। सभी जिम्मेदारियों को पूरा कर पाना सहज नहीं था, परन्तु मैं चुनौतियों के सामने हथियार डालना पसन्द नहीं करती। दिन-रात परिश्रम करके मैंने सब कुछ संभाल लिया। प्रात:काल बाकी लोगों के उठने के पहले ही मैं उठ जाती थी और सबके सो जाने पर ही मैं सोने जाती थी। अपने पतियों का प्रेम जीतने के लिए मैंने यही सब किया था।'

यद्यपि सत्यभामा श्रीकृष्ण से अत्यधिक प्रेम करती थीं, परन्तु आत्मीयता के कारण कभी-कभार वे उनकी उपेक्षा कर बैठती थीं। द्रौपदी के उपेदशों ने उन्हें उनकी त्रुटियों का बोध कराकर उनमें परिवर्तन ला दिया।

अत: यह ध्यान रखना होगा कि प्रेम तथा आत्मीयता के फलस्वरूप कहीं उपेक्षा का भाव न आ जाए।

प्रेम की दुर्लभता :

स्वार्थपरता के कारण इस जगत में शुद्ध या निश्छल प्रेम एक दुर्लभ गुण बनकर रह गया है। स्वार्थपरता ने धनी-गरीब, विद्वान-अनपढ़- सबको वशीभूत कर रखा है। इसने झोपड़ी तथा महल के निवासियों के बीच का भेद मिटा दिया है। यह जाति, धर्म या सम्प्रदाय का भेद भी नहीं मानती। इस संसार में जब तक नि:स्वार्थ प्रेम पुन: स्थापित नहीं हो जाता, तब तक मानव-जाति शान्ति और संतोष का आस्वादन नहीं कर सकती। एक बड़े शिक्षा-संस्थान के सचिव का मार्मिक अनुभव इस प्रकार है-'नौ वर्ष का एक बालक दूसरी कक्षा में पढ़ रहा था। वह अपने सहपाठियों, विशेषकर बालिकाओं से पैसे माँगा करता था। कभी तो वह भद्र व्यवहार करता परन्तु कभी-कभी धमकियाँ देकर भी वह पैसे ऐंठ लेता था। हर दिन वह पाँच से लेकर पच्चीस पैसे तक उधार माँग लेता। वह वादा करता, ''माँ के घर लौटते ही, मैं पैसे लौटा दूँगा।'' बच्चों के माता-पिता ने बालक के उक्त अपराध के बारे में प्रधानाध्यापिका से शिकायत की। प्रधानाध्यापिका तथा कक्षाध्यापक उस बालक को लेकर मेरे पास आए और उसके दुर्व्यवहार का विवरण देने लगे। किसी कठोर शब्द का प्रयोग किए बिना ही मैंने बालक से बातचीत की। बालक ने नि:संकोच भाव से तथा साहसपूर्वक कहा, ''सुबह मुझे घर में कुछ खाने को नहीं मिलता, इसलिए मैं कुछ खरीदने के लिये उनसे पैसे माँगता हूँ।'' उस बालक के अभिभावकों ने उसे विद्यालय के नि:शुल्क जलपान को ग्रहण करनेकी अनुमति नहीं दी थी। उसके पिता सिंगापुर में थे। उसकी माँ का देहान्त एक वर्ष पूर्व हो चुका था, परन्तु बालक को इसकी सूचना नहीं दी गई थी। वह उस दिन की बाट जोट रहा था, जब उसकी माँ आकर उसे प्रेम न करने वाले इन अभिभावकों के चंगुल से छुड़ा लेगी। उसके साथ देर तक बातें करने के बाद मैंने कहा, ''तुम्हें किसी से पैसा माँगने या उधार लेने की जरूरत नहीं है। विद्यालय में ही हम तुम्हारे भोजन का प्रबन्ध कर देंगे और तुम्हें पुस्तकें तथा पेंसिलें भी देंगे। चिन्ता मत करो। तुम्हें और क्या चाहिए?'' इतना जिद्दी और हठी-सा दिखने वाला वह बालक सिसकते हुए कहने लगा, ''मुझे मेरी माँ चाहिए। मुझे मेरी माँ दिला दीजिए। मैं अपनी माँ से मिलूँगा।'' शोकार्त बालक की सिसकियाँ सुनकर हम लोग भी बड़ी मुश्किल से अपने आँसू रोक पा रहे थे। हमने उसे निकट बुलाकर दिलासा दी और माँ सारदा देवी का एक चित्र देकर कहा, ''इन्हीं को अपनी माँ समझकर इनसे प्रार्थना करो। ये तुम्हारा मार्गदर्शन करेंगी।'' बालक शान्त होता-सा लगा। परन्तु अगले दिन से उसने विद्यालय आना बन्द कर दिया। उसके अभिभावक यह जानने आए कि विद्यालय में क्या बातचीत हुई थी और उसका स्थानान्तरण प्रमाण पत्र (टी.सी.) ले जाकर किसी अन्य विद्यालय में उसका दाखिल करा दिया। सच्चे नि:स्वार्थ प्रेम की बात तो छोड़िए, वह बालक सामान्य प्रेम से भी वंचित था।'

पिता के प्रेम से वंचित एक बालिका ने अपनी माँ के प्रति सहानुभूति के स्वर में कहा था, ''यदि मैं अपनी माँ के स्थान पर होती, तो अपने पति को उनके भाग्य के भरोसे छोड़कर चली गई होती।'' इस घटना की पृष्ठभूमि इस प्रकार है-उनका एक सम्भ्रान्त परिवार था, जिसमें रिश्तेदारों तथा सहायकों की कोई कमी नहीं थी। उनकी आर्थिक स्थिति भी बुरी न थी। परन्तु उक्त बातें सुनाने वाली बालिका के पिता शराबी थे और मद्यपान करके रात को देर से घर लौटने के बाद छोटी-मोटी बातों पर अपनी पत्नी से झगड़ा तथा गाली-गलौच करते और उसे मारा-पीटा करते थे। छोटी आयु की वह बालिका कच्ची नींद में जागकर आतंकित भाव से अपने पिता की क्रूरता और माँ की पीड़ा को देखती थी। थोड़ी देर बाद वह भी माँ के साथ रोते हुए थककर सो जाती थी। केवल स्कूल में ही वह अपने पिता के विरुद्ध बोलने को स्वतंत्र थी। कुल मिलाकर, घर के परिवेश ने एक ओर तो उसमें आतंक और दूसरी ओर पुरुष वर्ग के प्रति घृणा का भाव भर दिया था। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि इससे उसके व्यक्तित्व पर बड़ा प्रतिकूल असर पड़ा।

मदर टेरेसा कहती हैं, 'सेवा के क्षेत्र में लोगों के साथ बीस वर्षों तक कार्य करने के बाद एक बात मेरे लिए स्पष्ट हो गई है। किसी व्यक्ति के लिए सबसे अपमानजनक पीड़ा का भाव है, ''मुझे कोई नहीं चाहता''। हमने कुष्ठ रोग की दवाइयाँ ढूँढ़ ली हैं, तपेदिक का भी इलाज उपलब्ध है और बहुत-से लोग चिकित्सा के बाद स्वस्थ भी हो चुके हैं। सैकड़ों अन्य रोगों की दवाइयाँ ढूँढ़ी जा चुकी हैं, पर प्रेम से वंचित होने के रोग का इलाज कहाँ है? प्रेम से परिपूर्ण हृदय तथा सेवा को तत्पर हाथ ही प्रेम से वंचित होने की व्याधि को दूर कर सकते हैं।'

घर के बड़े-बूढ़ों या सगों के प्रेम से वंचित होने का दुर्भाग्य झेल रहे लोगों के दु:ख को कौन मिटा सकता है? किसी को प्रेमभरी दृष्टि से देखने के लिए कुछ खर्च नहीं करना पड़ता। वस्तुत: हर व्यक्ति के पास प्रेम का अक्षय भण्डार है। प्रेम देने वाले और प्रेम पाने वाले लोग धन्य हैं। दोनों ही सुख और संतोष की अनुभूति करते हैं। प्रेमी और प्रेमपात्र-दोनों के हृदय खिल उठते हैं। परन्तु यह एक विचित्र बात है कि इस सामान्य प्रेम का दान करने वाले लोग भी कम ही हैं। सियारामशरण गुप्त कहते हैं, 'अरे प्यार का प्याला रहते, भाया तो क्यों जहर तुम्हें?' इसका कारण अज्ञान और उचित प्रशिक्षण का अभाव है। सामान्य तथा सच्चे आध्यात्मिक प्रेम-दोनों ही न जानने वाला व्यक्ति भला कैसे दूसरों को प्रेम के महत्त्व का उपदेश दे सकता है? पर एक बात निश्चित है- सच्चे प्रेम का उदय होने पर हृदय की दुर्बलताएँ तथा अन्य सभी दुर्गुण तिरोहित हो जाते हैं और प्रेम का बन्धन सुदृढ़ होता जाता है।

प्रेम की शक्ति :

स्वामी विवेकानन्द ने कहा था, ''सारा संसार विशुद्ध प्रेम पाने को व्याकुल है। बदले में कुछ पाने की आशा रखे बिना ही हमें इस प्रेम का वितरण करना चाहिए। वापस पाने की कोई इच्छा किए बिना ही इसे अर्पित करो।

'प्रेम कभी निष्फल नहीं होता; कल हो या परसों या युगों के बाद, पर प्रेम की विजय अवश्य होती है। प्रेम ही मैदान जीतेगा। क्या तुम अपने भाइयों से प्रेम करते हो? समाचार-पत्रों में क्या छपता है और क्या नहीं, मैं कभी इसकी परवाह नहीं करता। प्रेम की असाध्य-साधिनी शक्ति पर विश्वास करो। यदि तुम्हारे पास नि:स्वार्थ प्रेम है, तो तुम सर्व-शक्तिमान हो।'

सत्य हम सब में एकता का संचार करता है। प्रेम ही सत्य है, घृणा असत्य है। घृणा हमें बाँटकर हमारे

(शेष पृष्ठ 26 पर)

गतांक से आगे

महान क्रान्तिकारी राव गोपालसिंह खरवा

– भँवरसिंह मांडासी

राजस्थान के प्रमुख सहयोगी क्रान्तिकारी

ठा. केशरीसिंह बारहठ– राजस्थान के प्रख्यात क्रान्तिकारी नेता ठा. केशरीसिंह बारहठ चारणों की सौदा शाखा में जन्मे एक युग–पुरुष थे। उनके पिता ठा. कृष्णसिंह शाहपुरा (मेवाड़) राज्य में एक अच्छी खासी जागीर के स्वामी थे। उनका घराना राजस्थान में मान्य एवं उदयपुर तथा जोधपुर के नरेशों द्वारा सम्मानित था। बून्दी के महाकवि सूर्यमल मिश्रण की अमर कृति 'वंश भास्कर' के टीकाकार के रूप में कृष्णसिंह की ख्याति थी। वे दोनों पिता–पुत्र कई वर्षों तक उदयपुर के महाराणा फतेहसिंह की सेवा में रहे थे। केशरीसिंह संस्कृत, हिन्दी और अंग्रेजी के अच्छे विद्वान थे। उच्च कोटि के कवि और लेखक थे। उनकी कविता में मानव के हृदय–तल को स्पर्श कर आन्दोलित करने की अद्भुत शक्ति थी। उनकी रचना 'चेतावनी का चूंगट्या' सुनने मात्र से ही महाराणा का सुप्त गौरव जागृत हो उठा था। अजमेर स्थित वाल्टर कृत 'राजपुत्र हित कारिणी सभा' के सदस्य थे। सभा की बैठकों में भाग लेने वे जब भी अजमेर जाते तो ए.जी.जी. राजपूताना के साथ घंटों तक उनकी वार्ता होती रहती थी। ए.जी.जी. उनकी ज्ञान–गर्भित विद्वता पर मुग्ध थे। केशरीसिंह ने कोटा में राजपूत छात्रावास की स्थापना की, जिसमें राजपूत और चारण छात्र रहते थे। जोधपुर में भी उनके प्रयास से चारण छात्रावास की स्थापना हो चुकी थी। राजपूत और चारणों में शिक्षा का प्रसार करके उन्हें देशभक्त एवं महान् व्यक्ति बनाने की उनकी उत्कट अभिलाषा थी। समाजवाद शब्द जब यहाँ के लोगों के लिए नया था, केशरीसिंह अपने को समाजवादी (Socialist) कहने में गौरव अनुभव करते थे।

जयपुर, जोधपुर, उदयपुर आदि राज्यों के प्रबुद्ध राजपूत सरदार केशरीसिंह को आदर और सम्मान की दृष्टि से देखते थे। कोटा महाराव के अन्तरंग सभासदों में उनकी गिनती थी। कोटा में उनका प्रभाव और सम्मान इतना सर्वमान्य था कि एक बार कोटा राज्य के कर्मचारी एक अंग्रेज इंजीनियर ने उनके सम्मान के विरुद्ध कुछ अनुचित शब्द कह दिए, जिस पर उसे बारहठ जी से क्षमा याचना करनी पड़ी थी।

बारहठ केशरीसिंह के छोटे भ्राता जोरावरसिंह ने वायसराय लार्ड हार्डिंग के दिल्ली के बाजार में हाथी की सवारी से जाते हुए पर बम फेंक कर क्रान्तिकारियों में अमर नाम कमा लिया था। केशरीसिंह के युवा पुत्र प्रतापसिंह तो उस क्रान्ति यज्ञ की राजस्थान की तरफ से प्रथम यज्ञाहुति थे।

इस प्रकार से बारहठ जी का सारा परिवार ही हुतात्माओं का परिवार था। केशरीसिंह अजमेर आते तब खरवा भी आते और कई–कई दिनों तक वहाँ रहकर राव गोपालसिंह के साथ राजपूतों में शिक्षा और क्रान्ति प्रसार की चर्चा किया करते थे।

पण्डित विष्णुदत्त त्रिपाठी– इकहरा बदन, मझला कद, गेहुँआ रंग, काली दाढ़ी और सिर पर जटाजूट धारी, पं. विष्णुदत्त उत्तरप्रदेश के मिर्जापुर निवासी विद्वान ब्राह्मण थे। बंगाल और उत्तर प्रदेश के क्रान्तिकारी संगठनों से सम्बन्ध था। क्रोधी एवं तामसी वृति वाला विष्णुदत्त आर्य–समाज के उपदेशक के रूप में घूमता था। खरवा को अपने रहने का केन्द्र–बिन्दु बनाकर मारवाड़ के समीपस्थ ग्रामीण क्षेत्रों में विचरण करता रहता था। क्षत्रिय बालकों को यज्ञोपवीत दिलाना और शराब छुड़ाना उनका मुख्य उद्देश्य था। गुप्त रूप

से वीर और साहसी दृढ़ वृत्ति वाले राजपूत युवकों में वह क्रान्ति के भाव भरता और देश की आजादी के संग्राम में समय पर भाग लेने का दीक्षा मंत्र देता और उनको शपथ दिलाता था। बाबरा, बलूंदा, पीह, थांवला, गोविन्दगढ़, आलणियावास आदि ग्रामों में भ्रमण करता हुआ वह बोरावड़ तक पहुँच जाता था। जहाँ पर उनका लघुभ्राता कृष्णदत्त बोरावड़ के ठाकुर केशरीसिंह का निजी सचिव बनकर रहता था एवं उधर के ग्रामों में क्रान्ति विचारों का प्रचार करने में अपने बड़े भ्राता का सहयोगी बना हुआ था। सोमदत्त लहरी, जोधा नारायणसिंह गोवलिया तथा ऊदावत गाड़सिंह ग्राम डेह को अपने विचारानुकूल बनाकर गुप्त क्रान्ति कार्यों में प्रवृत किया था। बारहठ केशरीसिंह के पास रहते हुए उसने कोटा में भी अपने कार्य में भाग लेने वाले अलेक सहयोगी साथी बना लिए थे।

सोमदत्त लहरी– वह एक अनाथ ब्राह्मण का पुत्र था। उसके जन्म स्थान का पता नहीं। सम्भव है वो अजमेर निवासी ही रहा हो। राव गोपालसिंह ने उसे अजमेर के आर्य समाज स्कूल में पढने के लिए भर्ती कराया था। उसके खान-पान और पढ़ाई आदि का सारा खर्चा वहन किया था। वह अपने नाम के आगे 'लहरी' शब्द लगाता था। सरकारी दस्तावेजों में सोमदत्त लहरी के नाम से उसका उल्लेख मिलता है। पं. विष्णुदत्त के विचारों का वह कट्टर अनुयायी बन गया था। देशभक्ति एवं क्रान्ति के नाम से विष्णुदत्त द्वारा किये गये उचित-अनुचित सभी प्रकार के हिंसक कार्यों में उसने पूरे उत्साह से भाग लिया था। देश हित में समर्पित खतरनाक क्रान्ति-पथ के यात्री वे दोनों गुरु-शिष्य, अंग्रेजों द्वारा सन् 1924 ई. में काले पानी की सजा से दण्डित किए गए थे। अंग्रेज सत्ता द्वारा प्रसारित Sedition Committee report 1918 में उनके कार्यकलापों पर विस्तार से उल्लेख किया गया है। उक्त रिपोर्ट के उद्धरणों से ज्ञात होता है कि अजमेर से पढ़ाई छोड़कर सोमदत्त, पं. विष्णुदत्त के साथ प्रथम कोटा और तत्पश्चात् बिहार तथा उत्तरप्रदेश को चला गया व वहाँ के क्रान्तिकारियों के साथ मिलकर उसने अनेक दु:स्साहसिक कार्यों में भाग लिया था।

मनीषी समरथदान– शेखावाटी के पूर्व सीकर ठिकाने के अधीनस्थ ग्राम नेछवा के समरथदान जाति से चारण थे। वे कट्टर आर्य-समाजी एवं देशभक्त व्यक्ति थे। अजमेर में उन्होंने ''राजस्थान मुद्रण यंत्रालय'' नाम से एक प्रेस की स्थापना की, जहाँ से 'राजस्थान-समाचार' नामक पत्र प्रकाशित होता था, जिसका सम्पादन समरथदान स्वयं करते थे।

शुरू में पत्र साप्ताहिक था, परन्तु रूस, जापान युद्ध के समाचारों को जानने और पढ़ने के इच्छुक पाठकों की इच्छा को जानकर इसे दैनिक कर देना पड़ा था। इस काल के राजस्थान के प्रसिद्ध कवि स्वामी गणेशपुरी की रचना ''कर्ण पर्व वीर विनोद'' का प्रकाशन राजस्थान मुद्रणालय अजमेर में ही हुआ था। उत्कट देशभक्त और आर्यसमाजी विचारधारा के होने के कारण समरथदान राव गोपालसिंह के विश्वस्त मित्र एवं परामर्शदाता थे। वे प्राय: खरवा आते-जाते रहते थे। वे छोटे कद और सुदृढ़ कद-काठी वाले व्यक्ति थे। खादी (रेजी) का अंगरखा पहनते, खादी की पाग बाँधते और हरदम कमर में तलवार लटकाए रखते थे। शेखावाटी के उस काल के जन-जीवन के पहनावे और रहन-सहन के तौर तरीकों का वे पूरा प्रतिनिधित्व करते थे। क्रान्तिकारियों से उनका गुप्त सम्बन्ध था। वे मनीषी समरथदान के नाम से प्रसिद्ध थे।

भूपसिंह– उत्तरप्रदेश के बुलन्दशहर जिले के गुढावलि ग्राम निवासी भूपसिंह गूजर कुलोत्पन्न युवक थे। लम्बे कद और सुदृढ़ शरीर वाले भूपसिंह का रंग सांवला और चेहरे पर चेचक के दाग थे। वह अच्छा लेखक था और खड़ी बोली में रचना भी किया करता था। किशनगढ़ में रहने वाले अपने किसी सम्बन्धी के पास वह नौकरी की तलाश में आया और कुछ समय

तक वहाँ राज्य के धाभाई जी के पास काम करता रहा। धाभाई जी से किसी बात पर अनबन होने पर वह अजमेर चला गया और वहाँ के रेलवे वर्कशॉप में नौकर हो गया। अजमेरे में वह एक किराये के मकान में रहता था जो मनीषी समरथदान की प्रेस के समीप था। अवकाश के समय वह उस प्रेस में जाया करता था। वहाँ व्याप्त देशभक्ति पूर्ण वातावरण से वह प्रभावित था। बारहठ जी ने उसे होनहार युवक जानकर राव गोपालसिंह के पास खरवा भेज दिया। सन् 1912 ई. के प्रारम्भिक महीनों में वह खरवा आया। राव गोपालसिंह ने उसे अपने कामदार मुणोत भूरालाल के पास उसकी नियुक्ति करके उसके काम-काज करने के तरीकों की बारीकी से जाँच की और अन्त में उसे अपने निजी सचिव के पद पर नियुक्त कर दिया। राव गोपालसिंह के पास आने वाले हिन्दी पत्रों के उत्तर लिखना, उनके भाषणों के प्रारूप तैयार करना और पत्राचार की फाईलों को सुरक्षित रखना आदि कार्य उसके जिम्मे थे। मिनाक्षा नाम एक मद्रासी सज्जन अंग्रेजी में आए पत्रों के उत्तर तैयार करने के काम पर नियुक्त था। अलारखां उस्ता बन्दूकों का दक्ष कारीगर था और ठिकाने में नौकर था। राव गोपालसिंह के निवास-कक्ष की चांदणी में बैठकर वह बन्दूकों की मरम्मत करता और खाली कारतूस भरने का काम करता था। भूपसिंह भी उस कार्य में रुचि रखता था। फुर्सत के समय मोड़सिंह भवानीपुरा व भूपसिंह भी उस्ता के पास जा बैठते और खाली कारतूस भरने के काम में हाथ बंटाते थे। खरवा आने के समय भूपसिंह की आयु 20/22 वर्ष की रही होगी। राव गोपालसिंह के पास रहने से भूपसिंह के विचारों में भी उग्र क्रान्तिकारी की भावना का उदय होना स्वाभाविक था। वहाँ रहते हुए उसे क्रान्तिकारी युवकों के सम्पर्क में आने के अनेक अवसर प्राप्त हुए। राव साहब का निजी सचिव होने से पद की प्रतिष्ठा एवं विश्वसनीयता ने भी उसे क्रान्तिकारियों से परिचित होने का यथेष्ट मौका दिया। **(क्रमशः)**

आभार-'राव गोपाल सिंह खरवा'
लेखक-सुरजन सिंह झाझड़

पृष्ठ 23 का शेष

छोड़ो चिन्ता-दुश्चिन्ता को

बीच शत्रुता उत्पन्न करती है। यह मनुष्यों को मनुष्यों से अलग-थलग कर देती है। इसलिए यह दोषपूर्ण और मिथ्या है। घृणा एक विनाशकारी शक्ति है। प्रेम एकीकरण की शक्ति है। प्रेम लोगों को एक साथ आबद्ध रखता है। माँ, बालक, परिवार, नगर, पूरा संसार और पशु-पक्षी प्रेम से ही आबद्ध रहते हैं। प्रेम ही जीवन के सामंजस्य की संचालक शक्ति है।

प्रेम का स्पन्दन :

एक सत्य घटना इस प्रकार है। भारत में रहने वाले एक दम्पति का इकलौता पुत्र अमेरिका में एक प्रख्यात चिकित्सक था। वहाँ उसने काफी नाम-यश कमाया। परन्तु दुर्भाग्यवश उसके तथा उसकी पत्नी के बीच मतभेद पैदा हो गए। जीवन से निराश होकर उसने खुद को गोली मार ली। उसी दिन उसकी माँ ने स्वप्न देखा कि उसका पुत्र खून से लथपथ मरा पड़ा है। जागने के बाद उसका मन बड़ा बेचैन हो गया। अगले दिन उसे टेलीफोन से इस दु:खद घटना की सूचना मिली। माँ का हृदय करुणा एवं विषाद से पूर्ण हो उठा।

किसी पुत्र का दुर्भाग्य दूर स्थित माँ के हृदय को प्रभावित कर दे-इसका यह एकमात्र उदाहरण नहीं है। ऐसे असंख्य उदाहरण मिले हैं। रूस में इस विषय पर अनेक प्रयोग हुए हैं। प्रेम का स्पन्दन तरंग की भाँति चलकर अपने प्रियजन के हृदय को स्पर्श करता है तथा उन्हें प्रभावित करता है। **(क्रमशः)**

विचार सरिता

(पञ्चसप्तति लहरी)

– विचारक

अध्यात्म जगत में महर्षि रमण का नाम बहुत ही आदर से लिया जाता है। किसी समय महर्षि रमण से पश्चिमी विचारक पॉल बर्टन ने पूछा था, 'मनुष्य की महत्त्वाकांक्षा की जड़ क्या है?' महर्षि रमण हंस कर बोले–'हीनता का भाव'। हीनता का भाव और महत्त्वाकांक्षी चेतना परस्पर विरोधी जान पड़ते हैं, लेकिन वे विरोधी हैं नहीं। अपितु एक ही भावदशा के दो छोर हैं। हीनता स्वयं से छुटकारा पाने के लिये महत्त्वाकांक्षा बन जाती है। इसे यदि सुसज्जित हीनता कहें तो भी गलत नहीं होगा।

इस संबंध में एक सच्चाई और भी है। व्यक्ति जब अपनी असलियत से भागना चाहता है, तो उसे किसी न किसी रूप में महत्त्वाकांक्षा का बुखार जकड़ लेता है। अपने आपसे अन्य होने की चाहत में वह स्वयं जैसा है, उसे ढकता है, लेकिन किसी तथ्य को बाहरी जामा पहनाकर ढांक देना, उससे मुक्त होना नहीं कहा जा सकता। हीनता की विस्मृति, हीनता का विसर्जन नहीं है। महत्त्वाकांक्षी मन की प्रत्येक सफलता आत्मघाती कही जा सकती है, क्योंकि वह अग्नि में घृत का काम करती है। सफलता तो आ जाती है, पर हीनता नहीं मिटती। इतिहास ऐसे ही बीमार लोगों से भरा पड़ा है। प्राय: सभी अज्ञानी लोग इस रोग से संक्रमित हैं।

अध्यात्म में कहीं कुछ पाने की लालसा नहीं होती, बल्कि स्वयं को सही ढंग से जानने-पहचानने का विज्ञान है। महत्त्वाकांक्षा से मुक्त विचारधारा ही सृजनात्मक स्थिति है। स्वस्थ चित्त में ही दीनता का अभाव और महत्त्वाकांक्षा से मुक्ति देखी जा सकती है। आत्मज्ञानी के अतिरिक्त इस अभाव से और कोई मुक्त नहीं है। साधक के लिए चित्त से सभी महत्त्वाकांक्षाओं की विदाई अति आवश्यक है।

भला आंतरिक रिक्तता के गड्ढे को बाहरी उपलब्धियों से भरना कैसे संभव है, क्योंकि जो बाह्य है, वह भला आंतरिक कमी को किस भाँति पूरा करेगा। धन, पद, प्रतिष्ठा, मान-सम्मान सभी कुछ बाहरी हैं। जब तक भीतरी दीन भाव का अभाव नहीं होगा तब तक यह बाहरी वैभव, सत्ता आदि किस काम के। जब तक अन्तरात्मा के वैभव को नहीं पहचान पाएँगे तब तक गरीबी रहेगी। अपने वास्तविक स्वरूप में कहीं कोई दीनता, हीनता आदि हैं ही नहीं। अपने होश में जीने की कला जिस महापुरुष को आ गई वह शहंशाह है, बादशाहों का बादशाह है। उसे किसी बाहरी पदार्थ की कामना, स्पृहा आदि छू ही नहीं सकती। वह पूर्ण काम महात्मा अपने निज स्वरूप की मस्ती में सदैव अलमस्त रहता है। स्वरूपानंद की खुमारी का नशा ही ऐसा है कि एक बार जिसको वह नशा लग गया फिर उसे उतारने का कोई उपाय ही नहीं रह जाता है।

ऐसे अल्मस्त फकीरों की मस्ती के सामने जगत के साजो सामान व ताज भी बोने हो जाते हैं। अष्ट सिद्धि, नौ निधि भी ऐसे सन्तों की हाजरी में खड़ी रहती है पर वह आत्मज्ञानी महापुरुष उनकी तरफ दृष्टि ही नहीं करता। ऐसे फकीरों की उस बादशाहियत को मेरा बार-बार सलाम।

सोहं! सोहं!! सोहं!!!

●

परमवीर मेजर शैतानसिंह

– ब्रिगेडियर मोहन लाल (से.नि.)

नैतिकता और मूल्यों के अवतार, वीरों के वीर, परमवीर मेजर शैतानसिंह को हम नमन करते हैं।

हम कैसे भूल सकते हैं उस वीरों के वीर, साहसी को जिसने चीन के साथ विश्व प्रसिद्ध रेजांग ला (लद्दाख) के युद्ध में असमान्य दृढ़-निश्चय व कृत संकल्प शक्ति से 18 नवम्बर, 1962 को अपने सैनिकों को अन्तिम साँस तक युद्ध के लिये प्रेरित किया।

नैतिकता तथा मूल्यों की अभेद्य नींव पर जीवन की अनश्वरता खड़ी है। मेजर शैतानसिंह (PCV) राष्ट्र भक्त सैनिक थे। नैतिक मूल्यों, आदर्शों, मनोबल, संघर्ष करने का उत्साह जैसे विचारों व भावनाओं को मूर्तरूप देने वाले होने के कारण उन्होंने राष्ट्र का गौरव बढ़ाया। हम सब उनकी बहादुरी, नैतिक स्तर, बोधगम्य नैतिक मूल्यों से सदा प्रेरणा लेते रहेंगे।

18 नवम्बर, 1962 को मेजर शैतानसिंह ने 13 कुमाऊ की 'सी' कम्पनी को साथ लेकर चीन के खिलाफ जैसी शूरवीरता युक्त लड़ाई लड़ी, उसमें उन्होंने उच्चतम नैतिक मूल्यों को परिलक्षित किया।

मेजर शैतानसिंह चौपासनी स्कूल के बड़े सरल स्वभाव के, ईमानदार व कड़ा परिश्रम करने वाले छात्र थे। एक अच्छे फुटबाल खिलाड़ी होने के कारण वे जोधपुर के फुटबाल प्रेमियों-प्रशंसकों के नायक थे। उन्होंने कभी आपा नहीं खोया। ऐसे व्यक्तित्व वाले विद्यार्थी के नैतिक मूल्य, जो उन्होंने अपनी कम्पनी के साथ रेजांग ला के युद्ध में प्रदर्शित किए, उनका विश्लेषण करना उचित होगा। उस युद्ध के प्रमुख दृश्यों का विवरण निम्न प्रकार है :-

रेजांग ला युद्ध :

लद्दाख में 17,000 फीट की ऊँचाई पर स्थित रेजांग ला कस्बा व चुसूल हवाई क्षेत्र की रक्षा का दायित्व 13 कुमाऊ की 'सी' कम्पनी को सौंपा गया था। यह विश्व का सबसे ऊँचा व सबसे ज्यादा ठण्डा क्षेत्र है। भौगोलिक विषमताओं के कारण यह कम्पनी बाकी बटालियन से अलग-थलग थी। चीनी सेना में सिकियांग पर्वत शृंखला क्षेत्र के ही सैनिक थे जो जमा बिन्दु से नीचे तापमान व तेज हवाओं के क्षेत्र में प्रशिक्षित थे। 18 नवम्बर को उनकी कम्पनी पर भारी तोपों, गोलों व हथियारों से दुश्मन का भारी आक्रमण हुआ उन्होंने अपने आप को बचाया व साथ ही दुश्मन को भारी क्षति पहुँचाते हुए उन्हें पीछे धकेला। लेकिन चीनी सेना ने लहरों की तरह बारम्बार और भी अधिक ताकत से आक्रमण किए। अपनी बाँह में गम्भीर घावों से आंशिक रूप से अक्षम होने के बावजूद उन्होंने एक प्लाटून से दूसरी प्लाटून तक जाकर घायलों की मदद की और उन्हें अन्तिम साँस तक लड़ते रहने के लिए प्रेरित किया। मशीन गन की गोलियाँ पेट में लगने से अब वे घातक रूप से घायल हो चुके थे परन्तु साथियों के पीछे के स्थान पर चले जाने के आग्रह को मना कर दिया और युद्ध करते हुए वहीं शहीद हो गए। प्रकृति माँ ने शहीद के पार्थिव शरीर को अपनी गोद में बर्फ के ढेर तले प्रतिष्ठापित किया, जिसे फरवरी 1963 में उत्खनन किया गया। इस प्रकार मेजर शैतानसिंह के असाधारण त्याग, साहस, प्रभावी नेतृत्व, कर्त्तव्य के प्रति अनूठे समर्पण ने उनकी कम्पनी को आखिरी गोली तक बहादुरी से लड़ने के लिए प्रेरित किया। मेजर शैतानसिंह ने निर्भीकता का ऐसा इहिस रचा जिसका कोई सानी नहीं। मेजर शैतानसिंह को (मरणोपरान्त) देश में बहादुरी का उच्चतम सम्मान **'परमवीर चक्र'** प्रदान किया गया। 13 कुमाऊँ की 'सी' कम्पनी ने शूरवीरतापूर्ण युद्ध कर चीनियों के तीन आक्रमणों को पीछे धकेला और कम्पनी के 114 में से 106 सैनिकों ने अपना महान बलिदान दिया। फरवरी, 1963 में जब भारतीय दल रेजांग ला गये तो मोर्चों में अपने हथियारों को हाथ में लिए शहीद सैनिक

पाये गये। इस युद्ध में 500 से अधिक चीनी सैनिक मारे गये व घायल हुए।

मेजर शैतानसिंह (PVC) और उनकी कम्पनी द्वारा प्रदर्शित नैतिक मूल्य :– नैतिकता और मूल्यों के दृष्टिकोण से जब हम इस ऐतिहासिक युद्ध का विश्लेषण करते हैं तो बहुत सारी अच्छाइयों की पुष्टि होती है। वफदारी इसका एक ज्वलंत उदाहरण था। सभी सैनिकों ने अपने कर्तव्य से कहीं बढ़कर अपनी भूमिका निभाई और वे सभी मेजर शैतानसिंह की टीम के उपयोगी सहभागी बने उन सबने अपने साथियों के प्रति नैतिक कर्तव्य निभाया। उनके अपने नेता के प्रति उत्कृष्ट सम्मान व उनके आत्म-सम्मान ने उन्हें सर्वोच्च बलिदान के लिए प्रेरित किया। मेजर शैतानसिंह की कम्पनी के अलावा संसार में किसी ने अपने कर्तव्य व देशभक्ति के प्रति इतनी निष्ठा नहीं दिखाई। अपने बारे में न सोचते हुए अन्तिम साँस तक लड़ना निस्वार्थ सेवा का असाधारण उदाहरण है। मेजर शैतानसिंह के अधीन नैतिक कर्तव्य और निस्वार्थ सेवा देकर उन्होंने इस हद तक सम्मान पाया कि वे हमेशा के लिए श्रद्धेय रहेंगे। इस प्रकार रेजांग ला युद्ध ने दिखाया कि किस प्रकार डर पर विजय पाकर हर सैनिकों ने अपने नेता के सर्वोच्च बलिदान के अनुसार साहस प्रकट किया। इस अर्थ में रेजांग ला युद्ध नैतिकता के सभी सिद्धान्तों को स्पष्ट रूप से सिद्ध करता है।

अपनी बटालियन से बहुत दूर रेजांग ला व चुसूल हवाई क्षेत्र के रक्षा की जिम्मेदारी मिलने पर मेजर शैतानसिंह ने दुश्मन की सैनिक स्थिति का सही जायजा लेकर मजबूत रक्षात्मक योजना बनाई व अपने सैनिकों को इस हद तक प्रेरित किया कि वे इस चुनौती का सामना करने के लिए दिल से पूरी तरह से तैयार हो गए। अन्य क्षेत्र में चीनी तेजपुर और मीसामारी के निकट पहुँच गए थे और तब केवल मेजर शैतानसिंह और उनके सैनिक ही देश के लिए आशा की किरण थे। इसलिए वे पूर्ण रूप से बड़ी लड़ाई के लिए तैयार थे। ऐसा क्या था कि मेजर शैतानसिंह व उनकी टीम वो कर सकी जो उन्होंने किया? क्या वो इसलिए हुआ कि वे अपनी बटालियन से अलग-थलग हो गये थे? क्या मेजर शैतानसिंह का नेतृत्व, उनका देश प्रेम और उनके नैतिक मूल्य जिन्हें उनके साथियों ने आत्मसात कर लिए थे, कारण बना? काफी हद तक ये सभी बातें सत्य हैं।

बालपन में हुआ संस्कार-निर्माण व्यक्ति में नैतिक मूल्यों के विकास में सहायक होता है। यह कार्य दो जगह फलीभूत होता है-व्यक्ति के घर में और विद्यालय में। मेजर शैतानसिंह के लिए अपने पिता ले. कर्नल हेमसिंह ओ.बी.ई. (Order of British Empire) द्वारा प्रथम विश्व युद्ध में फ्रांस में प्रदर्शित वीरता उनके लिए नैतिकता का प्रतीक थी। इसलिए वह स्वाभाविक था कि मेजर शैतानसिंह अपने पिता की वीरता व यौद्धिक कर्मों से प्रेरित होकर रणक्षेत्र में उन्हीं की भाँति महिमा प्राप्त करें। चौपासनी स्कूल, जो संयमित अनुशासन, खेलों में उपलब्धियों व बहादुर सैनिक तैयार करने के लिए जानी जाती थी, में प्रधानाध्यापक श्री कुम्भा हरे ने मेजर शैतानसिंह को संवारने में अहम् भूमिका निभाई। मेजर शैतानसिंह ने जिन आन्तरिक मूल्यों को प्राप्त किया था, सेना की नौकरी में बाहरी व्यावहारिक मूल्यों के ज्ञान द्वारा उनमें और वृद्धि की। इस प्रकार उन्होंने अपने साथियों को नैतिक मूल्यों का पाठ पढाया और अपनी टीम में संपूर्ण सामंजस्य बनाया तथा उच्च मनोबल से युद्ध के लिये तैयार किया। इस तरह वे तथा उनकी टीम अपनी पवित्र मातृभूमि की एक इंच जमीन भी दुश्मन को देने की बजाए युद्ध करते हुए मरना पसन्द करते थे। लगभग युद्ध की समाप्ति के बाद 3-4 सैनिकों को बटालियन जाकर युद्ध की प्रगति के बारे में बताने को कहा। किन्तु प्रेरणा और सौहार्द का स्तर ऐसा था कि वे पीछे जाने की बजाए अन्तिम साँस तक लड़ना चाहते थे। मेजर शैतानसिंह और उनके साथियों ने अनन्त साहस व वीरता के साथ दुश्मन को रेजांग ला से आगे प्रवेश करने से रोका।

हम नम्रतापूर्वक उनके प्रति हमारी श्रद्धा प्रकट करते हैं और उनकी वीरता से गौरवान्वित हैं तथा उनके नैतिक मूल्यों व मानकों से सदैव प्रेरणा लेते रहेंगे।

दिव्य चिकित्सा–दैवी चिकित्सा

– स्वामी गोपाल आनन्द बाबा, चित्तरपुर

मनुष्य मन, बुद्धि शरीर, आत्मा का पूंज है। केवल शारीरिक भाव ही नहीं बल्कि मनोभाव बौद्धिक भाव व आत्मभाव भी मनुष्य की मान्यता के लिए आवश्यक है। जहाँ शारीरिक शक्ति, मानसिक शक्ति व बौद्धिक शक्ति काम नहीं करती, वहाँ मानव की आत्मशक्ति अपना चमत्कार दिखाती है। हमारा भोजन केवल शारीरिक दृष्टि से ही लेने से काम नहीं चलता बल्कि मन, बुद्धि व आत्मा की तृप्ति के लिए भी तद्नुसार भोजन चाहिए। सबकी सन्तुष्टि का भोजन उपलब्ध होने पर ही मानव हर दृष्टि से नि:रोग व स्वस्थ रहता है।

हमारा स्वास्थ्य और सुख केवल उस भोजन या व्यायाम पर स्थित नहीं रहता जो हम लेते हैं। यह हमारे आत्मभावों पर निर्भर रहता है। जिस कार्य के करने में हमारे आत्मभावों की शक्ति प्रबलता से लगती है, वे शुभ हैं। उन शुभ कार्यों में मन लगाने से हमारे मनोभाव सम्मुन्नत होते हैं और आत्मविश्वास में अभिवृद्धि होती है। अच्छाई ऐसा चमत्कारमय भाव है कि उसके मन में आते ही सद्वृत्तियाँ नैतिक सामर्थ्य की वृद्धि करती है। बुद्धि–विकास के लिये, बौद्धिकता बढ़ाने के लिये सद्ग्रन्थों सद्साहित्य का पठन–पाठन, मनन–चिन्तन करने से भी हम स्वस्थ रहते हैं।

जो व्यक्ति अनैतिक कार्यों में प्रवृत्त हो जाते हैं, उनकी नैतिक शक्ति या आत्मबल क्षीण हो जाता है। पापमय होने के कारण वह भीतर ही भीतर इस कलुषित के द्वन्द्व अनुभव किया करते हैं। मस्तिष्क को शान्ति नहीं मिलती। नैतिक दृष्टि से अपराधी व्यक्ति अपने पापों और बुरे कार्यो से अपने मस्तिष्क को कमजोर कर डालता है। प्रत्येक पाप भावना विनाशकारी है। असत् विचार, पापमय कार्य, बेइमानी का मार्ग, मदिरापान, वेश्यागमन या परस्त्रीगमन आदि कुमार्ग मनुष्य को आत्मवंचना प्रदान करते हैं। पापी का मन उसे चुभता रहता है, उसमें गुप्त भय, चिन्ता, निराशा, ईर्ष्या जैसे महाभयंकर विकारों का ताण्डव होने लगता है। इस आन्तरिक रोग से बाह्य या शारीरिक रोग प्रारम्भ हो जाते हैं। पहले मन रोगी होता है, तब शरीर में रोग प्रकट होते हैं। कुविचार रोग का कारण है, तो सद्विचार, आत्मचिंतन, पूजा–भजन–संकीर्तन इत्यादि उसकी चिकित्सा।

पूजा, भजन, प्रार्थना, उपासना, शक्तियाँ एक केन्द्र बिन्दु पर एकाग्र होकर आन्तरिक गुप्त सामर्थ्य की वृद्धि करती हैं। आन्तरिक सामर्थ्य मनुष्य की निम्न कोटि की विचार धाराओं और कुत्सित भावनाओं से रक्षा करता है। ये वे साधन हैं, जिनसे दिव्यशक्ति का चमत्कार मनुष्य में प्रकट होता है और उसे ऊँचा उठाता है। अनादिकाल से मानव इस दिव्य साधनों से (के द्वारा) अपने दिव्य सामर्थ्य को प्रकट करता रहा है। भारत में ही नहीं विश्व के अनेक देशों में चल रहा भगवान (भगवत) नाम संकीर्तन की लहर विभिन्न मानसिक और शारीरिक रोगों को शान्त करने में सफल हुई है।

रोगी मनुष्य के लिए शास्त्रों में चिकित्सा के तीन प्रकार वर्णित हैं। प्रथम, मानवीय चिकित्सा, जिसमें औषधि (दवा–दारू) का विधान किया जाता है। द्वितीय, आसुरी चिकित्सा, जिसमें आवश्यकता पड़ने पर शल्य क्रिया की जाती है। तृतीय, सबसे महत्त्वपूर्ण चिकित्सा का विधान दैवी चिकित्सा है। ''आसुरी मानुषी दैवी: चिकित्सा त्रिविधानता:।'' स्वास्थ्य, सुख, आनन्द, शान्ति सब आपके (हमारे) अन्त:करण में

ईश्वरीय वरदान के रूप में विद्यमान हैं। ईश्वर चिन्तन हमारी समस्त भव बाधा, चिन्ता एवं अनिष्टों को दूर करने वाली महाऔषधि है।

वैदिक चिकित्साशास्त्र, आयुर्वेदीय साहित्य में रोगों का वर्गीकरण दो प्रकार से किया गया है-(क) दृष्टापचारज, (ख) अदृष्टापचारज। इस जन्म में किए गए कर्मों से उत्पन्न रोग दृष्टापचारज कहलाते हैं। इस प्रकार सभी सांसारिक सुख शुभ कर्मों के कारण तथा दु:ख अशुभ कर्मों के कारण प्राप्त होते हैं। शरीर भी दो प्रकार के होते हैं- (क) स्थूल शरीर, (ख) सूक्ष्म शरीर। सूक्ष्म शरीर या लिङ्ग शरीर पूर्व जन्मकृत शुभ-अशुभ कर्मों को पुनर्जन्म होने पर स्थूल शरीर में ला देते हैं तथा शुभाशुभ फलों को भोगते हैं। पूर्व जन्म कृत कर्मों को दैव या प्रारब्ध तथा इस जन्म के कर्मों को पुरुषार्थ या प्रयत्न कहा जाता है। आयुर्वेदानुसार जन्मान्तर में किए हुए पाप जीवों को रोग के रूप में पीड़ित करते हैं, उनका शमन औषध, दान, जप, देवार्चन एवं हवन से होता है।

''जन्मांतर कृतम पापम् व्याधिरूपेण बाधते।
तच्छान्तिरौषद्यैद निर्जपहोम सुरार्चनि:।।''

इस चिकित्सा को दैवव्यपाश्रय चिकित्सा कहा जाता है। इसमें दैव की शान्ति एवं निराकरण हेतु मणि, मंत्र, जप, कीर्तन, हवन, मंगलकर्म एवं यम-नियमों का प्रयोग किया जाता है। संकीर्तन शब्द देव उपासना से सम्बन्धित विभिन्न क्रियाओं को निरूपित करता है। इसमें नामोच्चारण, गुणगान, जप, भजन, अर्चन, कथा, सूक्त पाठ, स्वस्तिवाचन आदि का समावेश है। उपर्युक्त माध्यम से किसी भी साधन से किया गया ईश्वराधन संकीर्तन कहलाता है। संकीर्तन से स्वास्थ्य का उन्नयन तथा रोग का भी निराकरण होता है।

स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य की रक्षा हेतु रसायन चिकित्सा का विधान है। शरीर की दसादि धातुएँ जिससे उत्तम रूप से बनती रहें, शरीर स्वस्थ रहे तथा अकाल, जरा एवं व्याधि से दूर रहे उसे रसायन कहते हैं। महर्षि चरक ने रसाधन प्रकरण में रसायन का निरूपण किया है। सदाचार के परिपालन से व्यक्ति बिना औषध के ही रसायन के सभी गुण प्राप्त कर लेता है। आचार्यों ने आचार रसायन में जप, देव पूजन, आध्यात्मिकता चिन्तन तथा धर्मशास्त्र के पठन को विशेष स्थान प्रदान किया है। इस प्रकार देवार्चन या संकीर्तन से दीर्घायु, स्मरण शक्ति, मेधा, आरोग्यता, तरुणावस्था, कांति, वचनसिद्धि, नम्रता एवं शरीर से उत्तम बल की प्राप्ति होती है।

आयुर्वेदीय वाङ्मय में पदापद पर देव उपासना द्वारा रोग मुक्ति प्रतिपादित की गई है। चरक संहिता की टीका में आचार्य चक्रपाणि दत्त ने अधिकार पूर्वक उद्घोषित किया है कि अच्यूत, अनन्त और गोविन्द नाम का उच्चारणा सर्व रोगों का विनाश करता है-

''अच्यूतानन्त गोविन्द नामोच्चारण भेषजात।
नश्यन्ति सकला रोगा: सत्यं वदाम्यहम्।।''

वैद्यक ग्रन्थों में स्पष्ट आदेश है कि औषध को निश्चित प्रभावकारी एवं चमत्कारी बनाने हेतु उसके संचय और निर्माण काल में निम्मलिखित नामों का कीर्तन करें-

''अच्युतंचामृतं चैव जपेदोषद्यकर्मणि।''

आयुर्वेद में सूक्तपाठ और ईश्वर उपासना से मनोरोगों के कारण सत्व एवं तप दोषों का निर्धारण उल्लिखित है। महर्षि आत्रेय के मतानुसार स्वस्तिवाचन और मंत्रजप से उन्माद तथा अपस्मार रोग की निवृत्ति होती है। विषयज्वार दूर करने हेतु शिव-पार्वती की पूजा को औषध स्वरूप निवेदित किया गया है। चरकसंहिता में ज्वर चिकित्सा के प्रसंग में विष्णु सहस्रनाम के पाठ को 'सर्व ज्वर हर' निरुपित किया गया है-

(शेष पृष्ठ 34 पर)

अपनी बात

चर्चा में कई बार ऐसा प्रश्न स्वयंसेवक पूछते हैं कि हमने संघ को अपनाया है, संघ को अपना माना है, संघ का कार्य भी करते हैं, कभी मन भटकता है तो उसे मार्ग पर लाने का प्रयास भी करते हैं फिर भी निरंतर लगन लगी रहे, लौ लगी रहे इसके लिये क्या किया जाना चाहिए। किसी उद्देश्य को अपनाना, उसके प्रति संकल्पित होकर कार्य करना यह सब समझ में आता है क्योंकि ये सब बातें बुद्धि की हैं। बुद्धि इन्हें समझ लेती है। लौ की बात, लगन लगी रहने की बात हृदय की है, वह समझ में नहीं आती क्योंकि बुद्धि से उसका लेना-देना नहीं।

मन का घोड़ा समझ में आता है। चौबीस घण्टे भाग रहा है। ऊबड़-खाबड़ रास्तों में ले जाता है। उल्टी-सीधी यात्राएँ करवाता है। जहाँ नहीं जाना था, वहाँ पहुँचा देता है। जहाँ जाना था, वहाँ नहीं पहुँच पाते। क्योंकि घोड़ा कहीं ओर भागे जा रहा है। यह समझ में आता है, बुद्धि समझ लेती है इस बात को। इसमें कोई अड़चन नहीं है।

चेतना का सवार भी समझ में आता है, कि अगर होश बनाए रखें, घोड़े (मन) को साधें तो घोड़े पर सवारी हो जाती है। होश जाग्रत रखें तो घोड़ा हर कहीं नहीं ले जा सकता। जहाँ जाना चाहते हैं, उस तरफ यात्रा शुरू हो जाती है, एक दिशा मिलती है, एक भाव-दशा निर्मित होती है, जिसमें संघ मार्ग की यात्रा हो पाती है। मन तो केवल भटकता है, चैतन्य पहुँचाता है, यह भी समझ में आता है।

गुरु के शब्द का कोड़ा भी दिशा दिखाता है। संघ साहित्य हमारे हर भटकाव को रोकने के लिये सामग्री देता है। गुरु के इस कोड़े की बात भी समझ में आती है।

समझ में नहीं आती है-लौ की बात, लगन की बात। वह प्यास कैसे जगे? वह आग कैसे उठे? और अगर वह न उठे तो अन्य सब समझ, बुद्धि की समझ ही पर्याप्त नहीं है। वह तो ऐसी बात हुई कि भूख ही नहीं लगी जबकि भोजन तैयार था। प्यास ही नहीं लगी, सरोवर तो घर के सामने ही था। लेकिन प्यास ही न हो तो क्या करेंगे सरोवर का? बाकी सब समझ पर्याप्त नहीं जब तक लौ न लगे।

उस लौ को कहाँ पाएँगे? और कहीं पाने का उपाय नहीं, अपने भीतर ही खोजनी पड़ेगी। लौ तो जल रही है पर हृदय में और सिर (बुद्धि) में सम्बन्ध टूट गया है। लौ हमारे हृदय में लग रही है पर हमने हृदय को सुनना बन्द कर दिया और बुद्धि सोचे चली जा रही है। बुद्धि को लौ मिलती नहीं। क्योंकि लौ हृदय का विषय है। हृदय ही दायित्व उठा सकता है जलने का, विरह का, लौ का, प्यास का। हम प्रेम करते हैं तो हृदय से करते हैं-कोई सुगबुगाहट, कोई अंकुर का फूटना, जमीन का टूटना, हृदय के भीतर ही हलचल होती है।

जहाँ से हम प्रेम करते हैं, वहीं से हम प्रार्थना करेंगे। वहीं खोजना है उस लौ को। मस्तिष्क से नीचे उतरना होगा, हृदय में आना होगा। जब भी प्रश्न उठे कि कहाँ खोजें उस लौ को, तो आँख बन्द करें और हृदय में तलाशें। लेकिन समस्या यह है कि संघ का प्रेम जो हम मान रहे हैं, वह हृदय से नहीं, मानसिक समझ मात्र है। प्रेम नहीं है, इसीलिए द्वार भी बन्द है। हृदय से प्रेम करें तो लौ में गति मालूम होगी। लौ भभकने लगेगी। प्रेम का ईंधन देना है। हृदय में मौजूद है चिनगारी। राख जम गई है। उतरें हृदय में हटाएँ राख।

बड़ी प्रतीक्षा करनी पड़ेगी क्योंकि हृदय जाम पड़ा है। इतने दिनों से यंत्र काम ही नहीं कर रहा है, भूल गये हैं कहाँ है हृदय। प्रतीक्षा करना भी भूल गये हैं। पर जो प्रेम करना जानता है वह प्रतीक्षा करना भी जानता है। यात्रा लम्बी है और वहाँ (हृदय) में जाये बिना कोई उपाय नहीं। वहीं मंदिर है, वहीं जल रही है अहर्निश अग्नि। वहीं उतरना ही लौ लगाने का उपाय है।

शिविर सूचना

यह सूचित करते हुए अत्यन्त हर्ष है कि श्री क्षत्रिय युवक संघ के आगामी प्रशिक्षण शिविर निम्न प्रकार से होने जा रहे हैं –

क्र.सं.	शिविर	समय	स्थान	मार्ग आदि
01	प्रा.प्र.शि. (बालक)	05.11.2022 से 08.11.2022	झालरापाटन (झालावाड़)	आनन्द धाम नवलखा किला।
02	प्रा.प्र.शि. (बालक)	05.11.2022 से 08.11.2022	बस्सी डेम (चित्तौड़गढ़)	चित्तौड़ बेगू रोड़ पर बस्सी उतरकर डेम पहुँचे।
03	प्रा.प्र.शि. (बालक)	05.11.2022 से 09.11.2022	सुन्दरा (बाड़मेर)	गडरा रोड़ से सुन्दरा।
04	प्रा.प्र.शि. (बालक)	06.11.2022 से 09.11.2022	कीता (जैसलमेर)	जैसलमेर से बस है।
05	प्रा.प्र.शि. (बालक)	11.11.2022 से 14.11.2022	फरीदाबाद (हरियाणा)	
06	प्रा.प्र.शि. (बालक)	17.11.2022 से 20.11.2022	जोनपुर (उ.प्र.)	
07	प्रा.प्र.शि. (बालक)	24.11.2022 से 27.11.2022	कोटड़ियों की ढाणी भिंयाड़ (बाड़मेर)	
08	प्रा.प्र.शि. (बालक)	26.11.2022 से 28.11.2022	नैनावा (बनासकांठा)	
09	प्रा.प्र.शि. (बालक)	23.12.2022 से 26.12.2022	हरपालपुरा (उ.प्र.)	महोबा
10	प्रा.प्र.शि. (बालक)	24.12.2022 से 26.12.2022	भैसाणा (गुजरात)	
11	प्रा.प्र.शि. (बालिका)	24.12.2022 से 27.12.2022	नीमच (म.प्र.)	
12	प्रा.प्र.शि. (बालिका)	25.12.2022 से 28.12.2022	रामसर (बाड़मेर)	
13	मा.प्र.शि. (बालिका)	25.12.2022 से 31.12.2022	पुष्कर (अजमेर)	जयमल कोट, पुष्कर।
14	मा.प्र.शि. (बालक)	25.12.2022 से 31.12.2022	बाड़मेर	आलोक आश्रम, गेहूं रोड़, बाड़मेर।

क्र.सं.	शिविर	समय	स्थान	मार्ग आदि
15	मा.प्र.शि. (बालक)	25.12.2022 से 31.12.2022	धनोप माताजी (भीलवाड़ा)	
16	मा.प्र.शि. (बालक)	25.12.2022 से 31.12.2022	श्री डूंगरगढ़ (बीकानेर)	जयपुर-बीकानेर राजमार्ग पर।
17	मा.प्र.शि. (बालक)	25.12.2022 से 31.12.2022	नाचना (जैसलमेर)	पोकरण से नाचना बस।
18	मा.प्र.शि. (बालक)	25.12.2022 से 31.12.2022	पाली	पाली-भालेलाव रोड़ पर वन्दे मातरम एकेडमी।
19	प्रा.प्र.शि. (बालक)	28.12.2022 से 31.12.2022	मंदसोर (म.प्र.)	

दीपसिंह बेण्याकाबास
शिविर कार्यालय प्रमुख, श्री क्षत्रिय युवक संघ

पृष्ठ 31 का शेष

दिव्य चिकित्सा-दैवी चिकित्सा

''स्तुवत नाम सहस्त्रेण ज्वरान् सर्वान् व्यपोहति।''

महर्षि सुश्रुत ने ग्रह बाधा में नाम जप तथा अपस्मार में शिव पूजन को दोगापहरता सिद्ध किया है। श्रीमद्भागवत (महापुराण) के दशम स्कन्ध में वर्णित गोपी गीत का पाठ हृदय सम्बन्धी रोगों को दूर करता है-

''हृद्रोगमाश्वपहिनोत्पचिरेणधीरः।''

विष विकार दूर करने में विभिन्न मंत्रों का चमत्कारित प्रभाव लोकसिद्ध है। गरुड़ध्वज के नाम का कीर्तन तथा श्रवण-सर्पदंश, वृश्चिक दंश, ज्वर और शिरो-रोग का शमन करता है। केशव तथा पुण्डरीकाक्ष नामों का संकीर्तन नेत्र रोगों को नष्ट करता है।

धर्मप्राण हिन्दुस्थान आर्यावर्त्त भारतवर्ष में आदि-अनादिकाल से ही जप व संकीर्तन का अत्यधिक महत्त्व रहा है। नैत्यिक संकीर्तन मनोह्रास, अवसाद तथा विभाजित मानसिकता का निराकरण करने में औषध स्वरूप है। वर्तमान भौतिक जीवन के ऊहापोह में संकीर्तन का प्रयोग मनोवैज्ञानिक चिकित्सा का काम करता है।

पाश्चात्य वैज्ञानिक निश्चित शब्दों की बार-बार कर्णेद्रिय में प्रविष्ट करके कुछ रोगों का शमन करने में सक्षम सिद्ध हुए हैं। 'राम' एवं 'कृष्ण' शब्दों का सतत् उच्चारण विषाणु-ग्रस्त रक्त के निर्विषीकरण में सहायक पाया गया है। भारत में ही नहीं, विश्व के अनेक देशों में चल रहा भगवान (भगवत) नाम संकीर्तन की लहर विभिन्न मानसिक और शारीरिक रोगों को शान्त करने में सफल हुई है।

संकीर्तन के अलौकिक प्रभाव से दैहिक और भौतिक सन्ताप नष्ट होकर सुख, शान्ति तथा समृद्धि की अभिवृद्धि होती है। वृहद विष्णुपुराण में इसी तथ्य को निम्न रूप में अभिव्यक्त किया गया है-

**''सर्वरोगोपशमनं सर्वोपद्रवनाशनम् शान्ति दं
सर्वारिष्टानां हरेर्नामानुकीर्तनम्।''**

-: हार्दिक बधाई एवं शुभकामनाएं :-

चित्तौड़गढ़ विधायक

श्री चन्द्रभान सिंह जी आक्या

को जन्मदिन की

हार्दिक बधाई एवं शुभकामनाएं।

ईश्वर आपको उत्तम स्वास्थ्य व दीर्घायु प्रदान करें।

सी.पी. जोशी

सांसद, संसदीय क्षेत्र चित्तौड़गढ़

/mpcpjoshibjp /cpjoshibjp /cpjoshibjp /cpjoshibjp

नवम्बर, सन् 2022
वर्ष : 59, अंक : 11

समाचार पत्र पंजी.संख्या R.N.7127/60
डाक पंजीयन संख्या - Jaipur City /411/2020-22

संघशक्ति

ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा,
जयपुर-302012
दूरभाष : 0141-2466353

E-mail : sanghshakti@gmail.com
Website : www.shrikys.org

श्रीमान् ....

....

....

स्वत्वाधिकारी श्री संघशक्ति प्रकाशन प्रन्यास के लिये, मुद्रक व प्रकाशक, लक्ष्मणसिंह द्वारा ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा, जयपुर से : गजेन्द्र प्रिन्टर्स, जेन मन्दिर सांगाकान, सांगों का रास्ता, किशनपोल बाजार, जयपुर फोन : 2313462 में मुद्रित। सम्पादक-लक्ष्मणसिंह